

श्री सद्गुरुवे नमः

# अकह नाम

अकह नाम कैसे कै जानी । लिखि नहिं जाय पढ़ो नाहिं वानी ॥  
 कलियुग साधु कहै हम जाना । झूठ शब्द मुख करहि बखाना ॥  
 देही नाम सबै कोइ जाना ।  
 नाम विदेह विरल पहिचाना ॥  
 सार शब्द जब आबे हाथा । तव तो काल नबाबे माथा ॥  
 सोई नाम है अक्षर बासा । काया ते बाहर परकासा ॥

— सद्गुरु मधु परमहंस जी

साहिब



बन्दगी

सन्त आश्रम रंजड़ी, पोस्ट राया, ज़िला साम्बा ( जे. एण्ड के . )

**अकह नाम**

— सतगुरु मधुपरमहंस जी

© SANT ASHRAM RANJRI (J & K)

ALL RIGHTS RESERVED

First Edition	—	Aug., 2014
Copies	—	5000

**Website Address.**

[www.sahibbandgi.org](http://www.sahibbandgi.org)

[www.sahib-bandgi.org](http://www.sahib-bandgi.org)

**E-Mail Address.**

[satgurusahib@sahibbandgi.org](mailto:satgurusahib@sahibbandgi.org)

**प्रचार अधिकारी**

— राम रतन, जम्मू

**Editor**

**Sahib Bandgi Sant Ashram Ranjri**

**Post -Raya, Distt.-Samba (J & K)**

**Ph. (01923) 242695, 242602**

1.	गुरु कर ले आप समान	5
	* आत्मा के बँधन और नाम प्राप्ति का महात्तम	14
	* भक्ति क्षेत्र में झूठ, छल, निंदा समाई है	19
	* भक्ति भेद और सद्गुरु	20
	* परा-भक्ति ( संत मत )	28
2.	गुरु और सतगुरु में अन्तर	32
3.	गुरु कृपा सों साधु कहावे	35
	* सद्गुरु में विश्वास से मुक्ति	38
	* हम कबीर पंथी नहीं हैं	42
	* मैं ( खुदी ) से निकलना मुक्ति है	48
	* सार-शब्द बिना मुक्ति नहीं	51
4.	सार-शब्द परमपुरुष का दिया अकह नाम है	55
	* शरणागति फर्जी न हो	55
	* आत्मा ( सुरति ) को जगाना क्यों पड़ रहा है?	60
	* अकह नाम ( सार-शब्द )	67
	* अष्टम कमल	73
5.	नाम कहां से आया	96
6.	एक नाम खोजो चितलाई	114



## दो शब्द

भाईयो ! यह संसार काल पुरुष का देश है, मन का देश है । साहिब से पहले जितने भी पीर, पैगम्बर, ऋषि, मुनि आदि आए, सबने भूलवश काल को ही परमात्मा मान उसकी भक्ति की, इसलिए मन की दुनिया में ही रह गये । आज के महात्माओं को भी परम पुरुष की भक्ति का रहस्य मालूम नहीं है, इसलिए वे अपने साथ-2 अपने शिष्यों की नैया भी डुबा रहे हैं । वाणी तो सभी कबीर साहिब की ले रहे हैं, पर कुल मिलाकर भक्ति काल पुरुष की ही कर रहे हैं । कुछ ऐसे ही सत्य लोक की बात कर रहे हैं, पर वास्तव में ना तो उनके पास सच्चा नाम ही है और ना वो वहाँ पहुँचे हुए हैं । वे भी मन के ही दास हैं, इसलिए आ-जाकर सगुण-निर्गुण में ही अटक रहे हैं । यह मन बड़ा ही जालिम है, जिसने बड़े-बड़े महात्माओं को भी अपने जाल में फँसा रखा है । वास्तव में यह उनके माध्यम से जीवों को भ्रमित कर रहा है । इसलिए सब नकली नाम का व्यापार कर रहे हैं ।

**संतो यह मन है बड़ा जालिम ।।**

मन कारण की इनकी छाया, तेहि छाया में अटके ।

निरगुण सरगुण मन की बाजी, खरे सयाने भटके ।।

मनहीं चौदह लोक बनाया, पाँच तत्व गुण कीन्हे ।

तीन लोक जीवन वश कीन्हे, परे न काहू चीन्हे ।।

जो कोउ कहै हम मन को मारा, जाकी रूप न रेखा ।

छिन छिन में कितने रँग बदले, जे सपनेहुँ न देखा ।।

रासातल यकईश ब्रह्मण्डा, सब पर अदल चलावै ।

षट रस में भोगी मन राजा, सो कैसे के पावै ।।

सबके ऊपर नाम निरक्षर तहँ लै मन को राखै ।

तब मन की गति जानि परै, यह सत्य कबीर मुख भाखै ।।

# गुरु कर ले आप समान

---

अकह अनाम पुरुष है सोई । तन धर प्रगटे पुरुष न होई ॥  
कहि न जाय अकह को देखा । गुरु की दया सुर्त सो पेखा ॥  
अनुभव शब्द जहाँ ठहराना । को कह सके न जाय बखाना ॥  
तहाँ नहीं तुम दुतिया भाऊ । आपा मेटु तबही सब गायऊ ॥  
गुरु के शब्द हृदय मो आना । ता नर की भई मुक्ति निज जाना ॥  
कहै कबीर है शब्द सुहेला । गुरु पूरा सूर होय चेला ॥

झूठे धर्म वालों को साहिब सत्य से हानि पहुँचती है। धर्म के ठेकेदारों ने मुझे बदनाम करने के लिए निंदा की और शब्दों को चुराया। साहिब के साथ भी ऐसे ही किया। आचार संहिता, पाप-पुण्य सब पर साहिब ने बोला। इंग्लैण्ड में एक संस्था साहिब की वाणी पर वैज्ञानिक शोध कर रही है। मैंने सत्संग करके दो बड़ी चीजों की -

- (1) कश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ से कोहिमा तक भ्रमण कर धर्म-समाज को जाना।
- (2) चारों वर्णों के लाखों लोगों को एक साथ भक्ति से जोड़ा, मिथक तोड़ा।

साहिब ने मानवता को जगाया है, जाति-वर्ण को नहीं। जाति पूछना किसी भी आदमी की प्रतिभा को दबाने का हथियार है; अभिव्यक्ति पर पाबन्दी का हथियार है, हिंसा है। मुझे मेरे सब सत्संगी अपनी जाति वाला ही मान रहे हैं।

मेरा समस्त धर्मों का अध्ययन है। प्रायः मैं एक बात बोलता हूँ - घमण्ड से नहीं बोल रहा हूँ कि जितना वेद को मैं ठीक से समझ रहा हूँ कोई वेदज्ञानी नहीं जानता होगा। कुरान शरीफ को जितना मैं अच्छी तरह समझा हूँ एक मौलवी नहीं जानता होगा। जितना बाइबिल को मैं

ठीक तरह जानता हूँ उतना एक पादरी नहीं जानता होगा। ग्रंथ-साहिब को जितना मैं ठीक से समझता हूँ उतना एक ग्रंथी नहीं जानता होगा। मैं आष्टांग योग और बुद्धत्व के सिद्धान्त को जितना अच्छी तरह जानता हूँ उतना एक बौद्ध भिक्षु नहीं जानता होगा। आओ मैं इसकी वजह बताता हूँ। इन धर्मशास्त्रों में जितने लोक-लोकान्तरों की बात कही गई है वहाँ एक दृष्टा के लिए प्रलय है। मैं उन लोक-लोकान्तरों में भ्रमण करता हूँ, देखा है। आप इसे ऐसे समझें कि एक आदमी कश्मीर के बारे में पढ़ा है और एक आदमी कश्मीर घूमा है। दोनों में बहुत बड़ा अन्तर होगा न। एक कथावाचक पढ़ रहा है कि स्वर्गादि में लोग रहते हैं। मैं स्वर्ग में जाता हूँ। वो चाहे जीवन भर पढ़ता रहे स्वर्ग के बारे में, गया नहीं है, परन्तु उसे यथार्थ बोध नहीं है उसे। मैं जाता हूँ। पितृ तर्पण, पितृ लोक की बातें होती हैं, मैं पितृ लोक भी जाता हूँ। अमरलोक जाने के रास्ते में ये सभी लोक-लोकान्तर पड़ते हैं, मेरा तो निज लोक अमरलोक ही आना-जाना है। घमण्ड से नहीं बोल रहा हूँ, उन लोक-लोकान्तरों के बारे में कोई गोष्ठि करना चाहे तो आए। कई सिद्ध-साधक जिस सिद्धलोक की बात करते हैं, सिद्धों में क्या शक्ति है, वो मैं जानता हूँ। मैं सिद्ध लोक होकर जाता हूँ।

अरे भाई आप जम्मू से दिल्ली जा रहे हैं तो आपको पठानकोट, जालन्धर और अम्बाला का पता नहीं चलेगा क्या! आप लगातार आ-जा रहे हैं, आपको पता नहीं होगा क्या! स्टेशन आया, नहीं आया, आपको ज़रूर पता होगा। मैं नर्कों में भी जाता हूँ। नर्क में कैसी यंत्रणायें हैं। सात कुम्भी नर्क क्यों हैं। जैसे जेल में कुछ विचाराधीन कैदी हैं यानी अभी उनको दण्ड नहीं मिला है, विचाराधीन हैं, कच्चे कैदी हैं वे। तीन साल से नीचे जो कारावास है उनकी अलग व्यवस्था है। जो आजीवन कारावास है उनकी अलग रहन-सहन व्यवस्था है। इस तरह-सात नरक हैं।

साहिब ने और संतों ने जिस सच्चे 'नाम' की महिमा का गुणगान अपनी वाणी में किया है वो 'नाम' न तो वेदों में है, न कुरान में है, न

बाइबिल में है, न ग्रंथ-साहिब में है, न रामायण में है, न भगवत गीता में है, न कबीर सागर और न कबीर मन्थूर में है। जिस 'नाम' ने 'आत्मा' को इस भवसागर से पार उतारना है, उस 'नाम' का वास इस 'तीन-लोक' की सीमा से बाहर है अर्थात् 'चौथे लोक' (अमरलोक) में है।

हो सकता है आपको अभी मेरी बातें अटपटी लगें। जब मैं नर्क में गया तो देखा, दूर से देखा - यमदूत एक आदमी को मोगरियों से मार रहे थे। वह आदमी बहुत परेशान हो रहा था। मैं क्या देख रहा था - ओह! ये तो एक परछाई को मार रहे हैं। ये क्यों परेशान हो रहा है। मैं क्या सोच रहा था, यह तो भाई मैं आपसे पूछना चाहता हूँ। मेरी हर बात प्रमाणित है। कोई डण्डा मारने आता है आप डरते हैं या नहीं। क्यों डर रहे हैं। शरीर में रहकर देह अभ्यास के कारण नेचर बन गई है। इस कारण नर्क में वो परछाईनुमा शरीर है, वही उसका व्यक्तित्व (Individuality) है। वास्तव में उसको कोई नहीं मार सकता है। मैं उदाहरण देता हूँ। जितने भी धर्म हैं सब में ठीक-ठीक लिखा है, पर व्याख्या करने वाले अपने-अपने अनुसार कर रहे हैं, कमी यहीं हो रही है। किसी पंथ के मत में पहले अलख देश कहा फिर सचखण्ड बोल रहे हैं; यह तो गप्प है। मुझे एक बात बताओ, जिनको उल्टा टाँग करके आग के कुँए में डाल रहे हैं वो उसी समय नहीं मर जायेगा। एक है विष्णु का कुँभ। ऐसे सात-कुम्भ हैं वहाँ, इनको कुम्भी नर्क बोलते हैं। एक लाख-योजन यानी करीब 12 लाख किलोमीटर गहरा वो घड़ा है। कुम्भ घड़े को कहते हैं। आप सोचो न। अर्थात् मानसिक यंत्रणा मिलती है वहाँ। एक कुँआ हो सौ फीट गहरा, उसमें पचास फिट पानी भरा हो 50 फीट खाली हो। आदमी को उस कुँए में फेंक दें तो आदमी थोड़ी देर में मर जायेगा। इसी प्रकार मूत्र कुम्भ नर्क है, मवाद कुम्भ नर्क है, रुद्र (खून) कुम्भ नर्क है। सात कुम्भ नर्क हैं। धर्मराज के दरबार में पूरा सिस्टम है, उसके अनुसार सज़ा देते हैं। कोई व्यर्थ सज़ा नहीं है। चोरी करने की सज़ा, कत्ल करने की सज़ा के अनुसार दण्ड मिलता है। हालाहल के आग के कुँए में कोई फेंके जो लाख योजन गहरा हो, सड़ा मूत्र कुम्भ ऐसे कुम्भ में कितनी

देर कोई ज़िन्दा रहेगा। तुरन्त मर जाएगा। तो वे हज़ारों-हज़ारों साल ऐसे रह रहे हैं। कोई तो बात है। वो मानस-पीड़ा मिलती है। जैसे विष्टा देखकर घृणा हुई न! एक पीड़ा मिली न! वो पीड़ा है। लम्बे-लम्बे सूजे लगे हों, आदमी को कहो चलो उन पर कितनी देर चलेगा। किसी ने सोचा इस बात पर। वहाँ वो भ्राँतिकारी शरीर है, उसी को सज़ा है। तलवार उसको खींचकर मारे वो डर रहा है। मैं उस नर्क में देख रहा हूँ तलवार आर-पार हो रही है। कुछ भी नहीं हुआ वो डरे जा रहा है, चिल्ला रहा है, हाय मार डाला, हाय मार डाला।

एक आत्मज्ञानी को नर्क कुछ भी नहीं है, वो तो अपने स्वरूप में है; यमदूत ही भाग जायेंगे। आपके सामने यमदूत आ ही नहीं पायेंगे, उनको आपसे करंट लगेगा, उन्हें। साहिब ने साफ-साफ कहा-

**जबहि नाम जीव ले मोरा। यमदूत का रहे न फेरा॥**

**आदि नाम है सत्य कबीरा। जो जन गहे छूटे भव पीरा॥**

**आदि नाम निजसार भाई। जमराजा तेहि निकट न आई॥**

**सार शब्द का सुमरण करिहै। सहज अमरलोक निस्तरि है॥**

**सुमरन का बल ऐसा होई। कर्मकाट सब पल में खोई॥**

**ज्ञान उपदेश कहा गुरुपुरा। नाम गहे चेला कोई सूरा॥**

कोई हज़ार साल तक आग का वर्णन करता रहे, कभी आग देखी नहीं है, पर अच्छा बोलने वाला है। एक अन्य व्यक्ति जिसे अच्छा बोलना नहीं आता, पर एक बार उसने आग को देख लिया। किसका ज्ञान ज़्यादा होगा; निश्चित ही जिसने आग को देखा है।

**कबीर एकौ जानिया तो जाना सब जान।**

**कबीर एक न जानिया तो सब जाना जान अजान॥**

जिन महापुरुषों को स्वर्ग की रहनी पता है कि स्वर्ग कैसा है, वे स्वर्ग की आकाँक्षा नहीं करते। वहाँ भी बँधन है, वहाँ केवल कर्मफल का भोग है कर्म नहीं हैं।

निरञ्जन ने अपने राज्य (तीन-लोक) में चार प्रकार की मुक्तियों का



प्रावधान किया है। मुक्ति को भी शापित किया हुआ है ताकि हर एक जीव को यही भ्रम रहे कि वो हमेशा के लिए जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो चुका है। मन-माया के दायरे से हमेशा के लिए आजाद हो चुका है। संसार के सभी मान्य धर्मशास्त्रों में इन चार प्रकार की मुक्तियों का उल्लेख है – सामिप्य, सालोक्य, सारूप्य और सायुज्य। चारों मुक्तियाँ ‘कालपुरुष’ के दायरे के अन्दर हैं, उसके अधीन हैं। इन चारों मुक्तियों के बाद भी जीव को दोबारा जन्म लेना पड़ेगा; मात-गर्भ में आएगा। साहिब ने जिस ‘मुक्ति’ की बात अपनी वाणी में कही, वो चारों मुक्तियों से परे है। सद्गुरु से सच्चे विदेह ‘नाम’ की प्राप्ति के बाद ही जीव उस ‘मुक्ति’ को प्राप्त करके ‘परमपुरुष’ के लोक अर्थात् अमरलोक सिधारेगा और दोबारा कभी भी मात-गर्भ में नहीं आएगा। कर्म और जन्म-मरण की फाँस से हमेशा के लिए मुक्त हो जायेगा।

निरञ्जन की चारों मुक्तियाँ राष्ट्रीय अभ्यारण्य के समान हैं। जैसे राष्ट्रीय अभ्यारण्य है ‘कान्हा’, बहुत बड़े-बड़े जंगल हैं, तीन-तीन, चार-चार सौ किलोमीटर के जंगल हैं। चारों तरफ़ मोटी तारों से घेर कर सुरक्षित किया गया है। राष्ट्रीय अभ्यारण्यों में सभी जानवर रहते हैं। उनमें रहने वाले जानवर भी सोचते हैं हम आजाद हैं। वे सभी आजाद नहीं हैं। हाँ, राष्ट्रीय अभ्यारण्य के शेर और पिंजरे में बंद एक शेर की आजादी में फर्क है। एक शेर जो पिंजरे में बंद है बहुत तंग है, बेहद परेशान अनुभव कर रहा है, असहाय अनुभव कर रहा है।

इसलिये कहा गुरु मिलने से झगड़ा खत्म हो गया। गुरु नानक देव जी बार-बार फर्माते हैं – ‘गुरु पूरे की बड़ी बड़ियाई, नानक पार उतारा हो।’ वो मुक्त कर देगा, एक सच्चे पूर्ण गुरु के पास वो विदेह सच्चा ‘नाम’ है जो शास्त्रों में नहीं है। साहिब ने कहा –

पारस में अरू संत में तू बड़ो अंतरो जान।

वो लोहा कँचन करे वो कर लें आप समान॥

संतमत को भूँगमता कहा जाता है। जैसे भूँगा एक ऐसा जीव है जिसकी

मादा नहीं होती फिर भी भूँगा अपना वंश चलाता है। भूँगा अपना वंश चलाने के लिए किसी एक कीट के पास जाकर उसे जमीन पर पटक कर अपनी आवाज़ की गूँज कीट को सुनाता है। यदि कीट उस भूँगे की शब्द धुन को ग्रहण कर लेता है भूँगा बन जाता है। इस प्रकार उस कीट को भूँग बनाकर वो भूँगा अपने निज घर ले जाता है। कोई कीट जो प्रथम बार में ही भूँगे की आवाज़ चित में समा लेता है, सुखदायी है। कोई-कोई कीट दूसरी और तीसरी बार में भूँगे की शब्द धुन को ग्रहण कर वर्ण बदलता है। जो कीट भूँगे के शब्द को तीन बार में भी ग्रहण नहीं करता उसे भूँगा छोड़ देता है और कीट ही रह जाता है। इसी प्रकार सच्चा गुरु अकह 'नाम' शब्द देकर कौए रूपी मनुष्य से हँस बनाकर अपने समान कर लेता है।

जैसे भृङ्ग कीट के पासा। कीटहिं गहि पुरुगम परगासा ॥  
 शब्दघात कर महि तिहि डारे। भूँगी शब्द कीट जो धारे ॥  
 तब लैगौ भूँगी निज गेहा। स्वाती देह कीन्हो सम देहा ॥  
 भूँगी शब्द कीट जो माना। वरण फेर आपन कर जाना ॥  
 बिरला कीट जो होय सुखदायी। प्रथम आवाज गहे चितलाई ॥  
 कोई दूजै कोई तीजै मानै। तन मन रहित शब्द हित जानै ॥  
 भूँगी शब्द कीट न गहई। तौ पुनि कीट आसरे रहई ॥

सामान्यतः आदमी अपने पंथ को छोड़कर अन्य पंथ में नहीं जाता। यह ठीक है। कुछ लोग हमारे पंथ को भी छोड़ते हैं। वो क्यों छोड़ते हैं। अपनी खुद की कमी के कारण। या तो माँस खा लेते हैं या गंदा काम कर लेते हैं या शराब पी लेते हैं। लेकिन सुनो-तब वो क्या करते हैं, अपने दोष को छुपाने के लिए। मैं खुली किताब की तरह बात करता हूँ। वो पंथ छोड़ने वाला कहेगा; मैं वहाँ इतने दिन रहा, कुछ नहीं मिला, आदमी चालाक है न। वो यह नहीं बोलेगा कि सिद्धान्त से भटक कर गिरा हूँ इसलिये छोड़ दिया। आपको क्या मिला क्या नहीं मिला सामने दिखा दूँगा, पूरा। पहली बात कि 'नाम' देने के बाद मैंने आपको बदल दिया। यह काम बड़ा कठिन था। ऐसे थोड़े बदला - एक सच्चा 'नाम' आत्मा को दिया जो मन-

माया के विरुद्ध है, शरीर या व्यक्तित्व का नाम नहीं है। 'गुरु बिन हृदय शुद्ध नहीं होइ, कोटिन भाँति करे जो कोई।' 'पारस सुरति संत के पासा।''

कैसे बदला आपको। नाक, हाथ, पाँव नहीं बदले और यकीन रखना ये भी बदल दूँगा। मैं कोई टोटके वाली बातें नहीं कर रहा हूँ, बातचीत में काफ़ी संतुलन रखता हूँ। मैंने ये सब प्रेक्टिकली आजमाया है। एक आदमी को मैंने कहा – अपना हमशक्ल बना दिया। लोग मुझसे कहते हैं, ये आपका भाई है क्या। नैचर भी वैसी कर दी, तो मैं चुप हो गया। मैंने कहा ये हो सकता है। फिर मैंने सोचा, देखें क्या लड़की को भी अपना हमशक्ल बना सकता हूँ। तो एक लड़की को भी हमशक्ल बना दिया। बस मैं जान गया, विजयी हो गया। फिर वहीं रोक दिया मैंने ऐसा करना। एकाग्रता (Concentration) से सब कुछ हो सकता है; आप जिसका भी ध्यान करेंगे वैसे हो जायेंगे। एकलव्य को द्रोणाचार्य जी ने धनुर्विद्या कभी नहीं दी। एकलव्य ने माटी की मूर्ति बनाकर द्रोणाचार्य का गुरु रूप ध्यान किया तो उनकी पूरी कलायें आ गई। जब गुरु की माटी की मूर्ति में इतनी ताक़त है तो प्रत्यक्ष में तो होगी ही। साहिब ने ऐसे ही बोला क्या! – 'गुरु को कीजै दण्डवत् कोटि कोटि प्रणाम, कीट न जाने भूँग को वो कर ले आप समान।''

आप देखिये क्या हुआ। आपको बदल दिया। कितना – 'गुरु समाना शिष्य में, शिष्य लिया कर नेह।' क्या मैं अपने नामी में समाया। पक्का समाया। कैसे समाया – अपनी सुरति एकाग्र कर यानि कन्सेंट्रेशन द्वारा। एक तो फिजीकली है और एक व्यक्तित्व है। मैंने आपका व्यक्तित्व अपनी तरह बनाया। मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि इतनी बड़ी महिमा गुरु स्तुति की क्यों है। इसका तात्त्विक भाव क्या है। मैंने अपना व्यक्तित्व आपमें समाया क्या! बिल्कुल। जो आप पहले थे वो मैंने पूरा खत्म कर दिया। ये घमण्ड से थोड़ी बोल रहा हूँ; यथार्थ बोल रहा हूँ। मैं अपना पूरा व्यक्तित्व आपके अंदर दिखाता हूँ। मुझे माँसाहार से घृणा है, आपको भी हो गई होगी। चाहे पहले आप तीनों टाइम माँस खा रहे थे; नाश्ते में अण्डे, दोपहर को

मटन और रात को मछली। अब तो इनके खाने के बर्तन में भी नहीं खाओगे। जितना परहेज़ अब आप कर रहे हैं माँसाहारी इतना परहेज़ कभी नहीं करेगा। इतनी घृणा यह मुझसे आई। मैं झूठ नहीं बोलता, आप भी नहीं बोल सकते हैं; यदि बोलोगे पछताओगे बहुत, हाय क्यों बोल दिया।

हर आदमी दिमाग बनकर जी रहा है। शरीर का सबसे प्रमुख अंग दिमाग है न, ये सब तकनीक से किया मैंने। वो आपको दिखाता हूँ – छोटा बच्चा माँ से पूछता है, मम्मी मैं कहाँ से आया। माँ कहती है – भगवान ने दिया। माँ पूरा प्रोसेस नहीं बता रही है। वो कहती है भगवान ने दिया। वो सोचती है बच्चे को पूरा प्रोसेस बताना ज़रूरी नहीं है। मैंने आपको कैसे बदला – ये इतना ज़रूरी नहीं है बताना; पर आपको बदला। आगे खुद पता चल जायेगा क्या बदला। माँ-बाप जानते हैं जब बड़ा होगा बेटे को पता चल जायेगा, कैसे हुआ अभी नहीं बताना है।

हर आदमी जीता है और सोचता है। दिमाग बनकर सभी जी रहे हैं; दिमाग बनकर सभी काम कर रहे हैं। हम तकनीकी तौर से (Technically) दिखायेंगे, पूरी दुनिया को निरञ्जन नचा रहा है। **‘तीन लोक में मनहिं विराजी। ताहिं न चीन्हत पंडित काजी।।’** हम अपनी बातों की गुणवत्ता बता रहे हैं। वैज्ञानिक तरीकों से सिद्ध करूँगा कि पूरी दुनिया को मन नचा रहा है। बचपन में कठपुतली का नाच देखा। कठपुतली के नाच में एक रोमाञ्च है। वो रोमाञ्च यह है कि कठपुतली हवा में नाच रही है। उसे कोई नचा रहा है। ऐसे ही – **‘मनहिं निरञ्जन सबहिं नचाई।’** बचपन में जब मैंने कठपुतली का नाच देखा तो सोचने लगा, ये एक औरत भी बनाई, रंग-रूप है, इसमें जान तो नहीं है। ये कैसे नाच सकती है हवा में। मुझे कुछ दिखाई नहीं दिया, धागा भी नहीं दिखा। नचाने वाला भी नहीं दिखा। मैं सोचता रहा, तलाशता रहा। मैं बचपन से खोजी रहा हूँ; मेरा ध्यान खोज में लगा था। देखते-देखते मैंने देखा – ओह, परदे के पीछे एक आदमी बैठा हुआ है; धागों को ऊँगली में लेकर संगीत बजने के साथ कठपुतली नाच रही है। मैं एकाग्र हो गया – ओह, ये आदमी नचा रहा है

कठपुतली को। अब वो धागे वहाँ मुझे दिख रहे थे, उस आदमी के हाथ में धागे थे। मेरे बगल में बैठा हुआ लड़का नारायण था, मुझे याद है। मेरे पूरे क्लासफेलोज़ का नाम याद है। मैंने कहा नारायण देखो वो एक आदमी कठपुतली को नचा रहा है। नारायण बोला तुम्हें बड़ा दिख रहा है। दूसरी तरफ़ बगल में कीमत बैठा था। मैंने कहा कीमत वो देखो यार, आदमी है जो नचा रहा है। उसने कहा कोई नहीं है। ये तो कमाल है। आगे एक दोस्त और बैठा था। मैंने कहा, भाई देखो अर्जुन वो आदमी इसको नचा रहा है। उसने भी कहा कोई नहीं है। फिर मैंने पीछे वाले को बोला। अब मैं बार-बार सबको ये बताना चाह रहा था कि भाई मैंने देख लिया है, इसे एक आदमी नचा रहा है, कोई नहीं माना। मुझे तो धागे भी दिख रहे थे।

इस तरह किसी को भी 'मन' नचाते हुए नहीं दिख रहा है। मैं देख रहा हूँ, तभी तो मैं इसको नचा रहा हूँ। मैं 'मन' ही का तो मास्टर हूँ। मेरा मन मुझे जानता है। कभी नहीं कहता आज सिनेमा चलो। कभी नहीं कहता बम्बई की चौपाटी घूमने चलें। दिमाग सब कुछ नहीं है। हमारे शरीर के सभी अंग दिमाग का अनुकरण कर रहे हैं। मक्खी बैठी तो तुरन्त हाथ ने उठकर भगाया। हाथ को क्या लेना था यहाँ। हाथ में सोचने की ताकत नहीं है, इसको हुक्म मिला ब्रेन का, हर आदमी दिमाग से चल रहा है। यह ब्रेन भी सर्वोपरि नहीं है; इसको 'मन' चला रहा है। मन ही पर्दे के पीछे बैठा हुआ है। जैसे मदारी कठपुतली को नचा रहा है या बंदर को नचा रहा है। इसी तरह इस दिमाग को भी 'मन' संदेश प्रेषित कर रहा है। यह सुषुम्ना नाड़ी में बैठा है, वहाँ से सब कुछ देख रहा है। 'मन' को कोई नहीं देख रहा है। 'मन' ही निरञ्जन सबहिं नचाई।' वाह-वाह, सबको नचा रहा है। 'मन को कोई देख न पाई।'।

बाजीगर का बांदरा ऐसा जीव मन साथ॥

नाना नाच नचाय के राखे अपने हाथ॥

साहिब ने क्यों कहा - 'तीन लोक में मनहि विराजी ताहि न चीन्हें पंडित काजी।' कोई बता सकता है तीन लोक में मन ही मन है। संतो, तन

खोजे मन पाया। मन ही तन है, तन ही मन है। पाँच तत्व सब मन की क्रिया और माया है; इन्द्रियाँ ‘मन’ हैं।

पाँच तत्व तीनों गुण जानो। चौदह यम ता संग पहचानो ॥  
 यहि विधि कीन्ही नर की काया। मारे खाय बहुरि उपजाया ॥  
 ओंकार है वेद को मूला। ओंकार में सब जग भूला ॥  
 है ओंकार निरञ्जन जानो। पुरुष नाम सो गुप्त अमानो ॥  
 सहस अठासी ब्रह्मा जाया। भा बिस्तार काल की छाया ॥  
 ब्रह्मा ते जिव उपजे बारा। तिन पुनि कथे बहुत विस्तारा ॥  
 जीवन को ब्रह्मा भटकावा। अलख निरञ्जन ध्यान दृढावा ॥

### आत्मा के बँधन और ‘नाम’ प्राप्ति का महात्तम

हम इस ‘तीन लोक’ के मालिक – निराकार निरञ्जन को ‘कालपुरुष’ कह रहे हैं जो स्वयं ‘निराकार-मन’ रूप में हरेक जीव में समाया हुआ है। दुनिया के सभी धर्म/पंथ/मार्ग/मत-मतांतर आदि इस कालपुरुष को ही अपना सच्चा मालिक अर्थात् ‘परमपुरुष’ मान कर पूज रहे हैं। हमारा विरोध होना स्वाभाविक है। क्योंकि दुनिया के लोगों ने अज्ञानवश भक्षक को ही अपना सच्चा ‘रक्षक’ मान लिया है। हमें भक्षक की भी पहचान है और रक्षक का भी ठीक-ठीक पता है। इसलिये हम किसी भी नज़रिये से झूठ को ‘सत्य’ नहीं कहने वाले, क्योंकि हमें ‘सत्य’ का यथार्थ बोध है।

साहिब और संतो ने जिस सच्चे ‘नाम’ की महिमा का गुणगान किया है उसी अकह ‘नाम’ की रोशनी में ‘मन’ दिखाई देगा, बुद्धि दिखाई देगी, चित्त दिखाई देगा, अहंकार दिखाई देगा। नाम की रोशनी में काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार दिखाई देंगे इन सबने मिलकर ‘आत्मा’ को बाँधा हुआ है। ये सब शत्रु जो मिलकर ‘आत्मा’ को अनादिकाल से अपने इशारों पर नचा रहे हैं; सद्गुरु के द्वारा ‘नाम’ की नकेल लगाने के बाद इन सबका जोर फिर आत्मा पर नहीं चल पाता है। आत्माचेतन हो जाती है, समझ जाती है कि जिन्हें वो अपना अंग मानकर अपनी ही उर्जा द्वारा संचालित

कर रही है वे सब हकीकत में उसके शत्रु हैं। आत्मा फिर मन के इशारों पर नाचना बंद कर देती है और सद्गुरु के 'नाम' की डोर को पकड़ कर अपने लोक-अमरलोक/सतलोक की प्राप्ति कर लेती है। वाणी है -

सार नाम सतगुरु सो पावे। नाम डोर गहि लोक सिधावे॥  
 धर्मराय ताको सिर नावे। जो हँसा निःतत्त्व समावे॥  
 सार शब्द विदेह स्वरूपा। निःअक्षर बहि रूप अनूपा॥  
 तत्त्व प्रकृति भाव सब देहा। सार शब्द निःतत्त्व विदेहा॥  
 पुरुष सुनाम सार परबाना। सुमिरण पुरुष सार सहिदाना॥  
 जब लग ध्यान विदेह न आवे। तब लग जिव भव भटका खावे॥  
 ध्यान विदेह औ नाम विदेहा। दोड़ लख पावै मिटै संदेहा॥  
 छिन इक ध्यान विदेह समाई। ताकी महिमा वरणि न जाई॥  
 काया नाम सबै गोहरावें। नाम विदेह विरले कोई पावें॥  
 जो युग चार रहे कोई कासी। सार शब्द बिन यमपुर वासी॥  
 नीमषार बढी परधामा। गया द्वारिका प्राग अस्नाना॥  
 अड़सठ तीरथ भूपरिकरमा। सार शब्द बिन मिटै न भरमा॥

बँधा कौन है? बाँधने वाला कौन है? बँधन क्या हैं? बँधे कैसे हैं? इन सभी प्रश्नों के उत्तर जाने बिना, यथार्थ 'मुक्ति' सम्भव नहीं। साहिब ने कहा - इन प्रश्नों के उत्तर केवल वही सद्गुरु देगा जो स्वयं पूर्ण रूप से 'मुक्त' है। जो गुरु स्वयं अंधकार रूपी अज्ञान में जी रहा है, भौतिकवाद में उलझा हुआ है, पोथियों का बोझ अपने माथे पर लादे घूम रहा है, उस गुरु से कभी भी 'आत्मकल्याण' की आशा नहीं रखना। ऐसे गुरु को तजने में एक पल की भी देरी नहीं करना, चाहे उस गुरु को पूजने, मानने वालों की संख्या लाखों/करोड़ों में क्यों न हो। सद्गुरु के घर [आत्मा का निजलोक-अमरलोक] की खबर तो त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) को भी नहीं है तो फिर धरती पर रहने वाले संसारी मनुष्यों की अज्ञानता का वर्णन शास्त्र और पोथियों से कैसे सम्भव होगा।

सूक्ष्म सहज पंथ है पूरा। तापर चढ़ो रहे जन सूर।  
 नहिं वहँ शब्द न सुमरा जापा। पूरन वस्तु काल दिख दापा॥

वेद चारों नाहिं जानत, सत्यपुरुष कहानियां।

वेद को तब मूल नाहीं, अकथ कथा बखानियां।।

काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार की रचना 'निरञ्जन' (काल/मन) ने अपनी स्थूल सृष्टि को चलाने और 'आत्मा' को शरीर के बँधन में बाँधने के लिये ही की है। इन पाँचों वृत्तियों का वास 'मन' में है। 'आत्मा' में इन पाँचों में से किसी एक का भी वास नहीं है। मन ने अपनी सृष्टि के प्रारम्भ से ही 'आत्मा' को काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार की रस्सियों से बाँधा हुआ है। इन पाँचों ने मिलकर सबकी खबर ली, सबको नचाया है। कोई भी इनकी मार और पकड़ से बचा नहीं, इन पाँचों ने त्रिदेवों, राम, कृष्ण, जीसस, बुद्ध, महावीर, देवी-देवता, ऋषि-मुनि, पीर-पैगम्बर, कुतुब-औलिया, सिद्ध-साधक, योगी-योगेश्वर, आदि सबको अपनी फाँस में फँसा लिया। किसी को भी अपने मूल 'आत्मस्वरूप' अर्थात् 'हँस रूप' तक नहीं पहुँचने दिया। साहिब कह रहे हैं कि ये सभी 'मन' द्वारा बाँध लिये गए, एक भी मन के दायरे से मुक्त नहीं हो सका।

जन्म-मरण का कारक और कारण ही 'कर्म' है। साहिब कह रहे हैं कि 'कर्म' की रचना 'कालपुरुष' ने 'आत्मा' को शरीर के बन्धन में रखने के लिए ही की है। इस रहस्य को इस तीन-लोक में कोई भी नहीं जानता है, त्रिदेव भी नहीं, केवल एक सद्गुरु जानते हैं। जीव से कर्म करवाने वाला भी 'मन' है और किये हुए कर्म का फल देने वाला भी स्वयं 'मन' ही है। कर्म केवल शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ही किया जा रहा है। 'आत्मा' को कर्म की कोई आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि आत्मा शरीर ही नहीं है। अज्ञानवश आत्मा ने 'मन' के कहने पर खुद को शरीर मान लिया है। इसलिये आत्मा हरेक कर्म में मन के साथ शामिल हो रही है। शरीर को चलाने के लिए आत्मा अपनी उर्जा दे रही है। कर्म के द्वारा 'आत्मा' स्वयं को 'मन' और 'माया' के दायरे से कभी भी मुक्त नहीं करवा सकती है। इस 'आत्मा' को केवल एक पूर्ण 'सद्गुरु' ही 'सजीवन नाम' देकर मुक्त करवायेगा तभी 'आत्मा' कर्म के बँधन से छूट पायेगी, अन्यथा



नहीं। साहिब कह रहे हैं -

चारों खानि कर्म अधिकाई। चहुँ खानि मिलि कर्म दृढाई॥  
 कर्महि धरती पवन अकाशा। कर्महि चन्द्र सूर्य प्रकाशा॥  
 कर्महि ब्रह्मा विष्णु महेशा। कर्महिते भयो गौरि गणेशा॥  
 सात बार पन्द्रह तिथि साजा। नौग्रह ऊपर कर्म विराजा॥  
 कर्महि राम कृष्ण अवतारा। कर्महि रावण कंस संहारा॥  
 कर्महि ते ले वसुदेव घर आवा। कर्म यशोदा गोद खिलावा॥  
 कर्महि ते वन गरु चराई। कर्मते गोपी केलि कराई॥  
 कौशल्या तप कर्म जो करिया। कारण कर्म राम औतरिया॥  
 कर्महि दशरथ कीन्ह उदासा। कर्महि राम दीन्ह बनवासा॥  
 कर्म जाय जब धनुष चढ़ावा। कर्महि जनक सुता सिरनावा॥  
 कर्म हरयो सीता कहँ आई। दुख सुख कर्म ताहि भुगताई॥  
 कर्म रेखते कोई न मुक्ता। लक्ष्मन राम कर्मफल भुगता॥  
 कर्म सागर बाँधउ बँध कहिया। कर्महि जल जीवन दुख सहिया॥

कर्म फाँस छूटे नहीं, केतौ करो उपाय।

सद्गुरु मिलै तो ऊबरै, नहीं तो परलय जाय॥

आप सभी की प्रतिदिन 'अस्थाई मृत्यु' होती है लेकिन आप में से किसी को भी इस रहस्य का पता नहीं है। आप रोज 'स्थूल शरीर' से निकल कर एक दूसरे सूक्ष्म-शरीर में प्रवेश ले लेते हैं जिसे लिंग देही (अँगूठे जितनी) कहते हैं। फिर दोबारा आप 'स्थूल शरीर' में खुद-ब-खुदी वापस आ जाते हो, लेकिन आप पूरे क्रम से बिल्कुल बेखबर हो। यह क्रम आप सभी के साथ रोज नींद के समय घटित होता है। यह क्रम आप सभी के साथ जीवन भर चलता है, लेकिन आप में से किसी को भी इसका यथार्थ बोध नहीं है। आप सभी के पास एक नहीं बल्कि 'छः शरीर' हैं लेकिन आपको इन छः शरीरों में से किसी भी एक शरीर का यथार्थ बोध नहीं है। आप सभी 'परमपुरुष' का अंश हैं, आप साधारण नहीं हैं। आप सभी ने अज्ञानवश खुद को 'शरीर' और 'मन' मान लिया है। आप सभी

ने 'इन्द्रियों' के अधीन होकर अपना मूल्य भ्रमवश कम कर लिया है। आप सभी ने अज्ञानवश उन विभूतियों को अपना भगवान मान लिया है, जिनका आपकी 'आत्मा' के साथ कोई भी सम्बंध नहीं है। आप सभी अनादिकाल से इस 'कालपुरुष' के देश में रह रहे हैं इसलिये आप सभी अपने सच्चे घर 'अमरलोक' की सुध भूल चुके हैं।

माता-पिता-भाई-बहन-बेटा-बेटी-पति-पत्नि आदि सभी रिश्ते केवल 'इन्द्रियों' के हैं। इन सबकी रचना 'मन' और 'माया' ने मिलकर 'आत्मा' को बँधन में रखने के लिए की है। इनमें से कोई भी रिश्ता 'आत्मा' का नहीं है। ये सभी रिश्ते 'इन्द्रियों' के कारण सच्चे लग रहे हैं। एक भी व्यक्ति इस संसार में ऐसा नहीं है जो इन रिश्तों को दिल से झूठा मानकर जी रहा हो। सभी इन्हें सच मानकर जी रहे हैं। यह कमाल है इस 'जाग्रत अवस्था' का जिसके कारण 'आत्मा' इन सभी रिश्तों को, इस संसार को, शरीर को, इन्द्रियों को, मन को, इच्छाओं को अपना ही अंग मान रही है। जब तक आप इस जाग्रत अवस्था में हैं आपको इस संसार की हरेक वस्तु, हर एक पदार्थ 'सत्य' आभासित होगा। आपकी बुद्धि चाहकर भी इन्हें झूठला नहीं पायेगी। यही 'कालपुरुष' की रची हुई 'माया' है जिसमें तीन लोक समाय हुए हैं।

आप सभी को हर पल बाहरी संसार में रखने की साजिश आप सभी के अंदर समान रूप से निरंतर चल रही है जिससे आप सभी बेखबर हैं। आप सभी के खिलाफ साजिश रचने वाला आप ही के अंदर बैठा है, लेकिन कहाँ बैठा है, किस रूप में बैठा है, कैसे साजिश रच रहा है, क्यों साजिश रच रहा है, कौन है? इसकी भी कोई खबर नहीं है, आपको! साहिब कह रहे हैं कि इतना बुद्धिजीवी मनुष्य जिसने पृथ्वी के गर्भ में झाँक लिया, समुद्र की गहराई को माप लिया, सौरमण्डलों की जानकारी प्राप्त कर ली; वो मनुष्य अपने शरीर के अंदर की पूरी संरचना और चल रही गतिविधि से पूरी तरह बेखबर है।

## भक्ति क्षेत्र में झूठ, छल, निंदा समाई है

“जो वस्तु मेरे पास है, वो इस ब्रह्माण्ड (तीन लोक) में कहीं नहीं है।” यह बात मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह रहा हूँ, अति विनम्र भाव से कह रहा हूँ, घमण्ड से नहीं। मेरे इन शब्दों पर विवाद करना मूर्खता है, इसलिये विवाद छोड़कर इस पर चिंतन करें। इस ब्रह्माण्ड में कोई भी किसी का ‘अंतःकरण’ परिवर्तित नहीं कर सकता है, वहाँ तक किसी की भी पहुँच नहीं है। मैं ‘नामदान’ देते समय अंतःकरण पर जाकर झाड़ू लगाता हूँ, सफाई करता हूँ। यह मेरा अहंकार नहीं बल्कि विश्वास है। जो लोग सच्चे दिल से मुझसे जुड़े हैं वो मेरे शब्दों को ठीक-ठीक समझते हैं; वो जानते हैं कि उन्हें क्या प्राप्त हुआ है।

भक्ति में झूठ छल-कपट, पाप, हिंसा, माँसाहार, शराब आदि पूर्ण रूप से वर्जित हैं। जो व्यक्ति इनमें से किसी एक का भी संग कर रहा है, वो किसी भी दृष्टि से भक्त कहलाने के काबिल नहीं हैं। ऐसा व्यक्ति तो खुद को भक्त कहकर भक्ति का मज़ाक उड़ा रहा है। भक्ति में भक्त को अंदर और बाहर दोनों ही रूप से खुद को हमेशा शुद्ध-सफा रखना है।

साहिब कह रहे हैं कि जिस सत्ता ने मनुष्य को घोर ‘अज्ञान’ और ‘अंधकार’ में रखा हुआ है, मनुष्य उसी सत्ता को ‘परमात्मा’ मानकर अनादिकाल से पूजता आ रहा है। जो सभी जीवों को क्रूरता के साथ ‘मारकर’ खाता जा रहा है, सभी ने डर के कारण उस शैतान को ‘परमात्मा’ का दर्जा दे दिया है। निरञ्जन खोपड़ी पर सवार होकर हरेक व्यक्ति से ‘झूठ’ बुलवाता है। झूठ बोलने वाले व्यक्ति को यह पता होता है कि वो ‘झूठ’ बोल रहा है, उसके बावजूद भी व्यक्ति ‘झूठ’ बोलता चला जाता है। ‘झूठ’ निरञ्जन का पोषण करता है इसलिये निरञ्जन ‘आत्मा’ की ताकत लेकर ही ‘झूठ’ को व्यक्ति के जीवन में स्थापित करवा देता है, ‘आत्मा’ को कुंद रखने के लिए। झूठ... बोलने वाले व्यक्ति का दिमाग और हृदय दोनों में ही अंधकार बढ़ जाता है और दोनों ही पूरी तरह से अस्थिर हो जाते हैं। निरञ्जन की ताकत

‘झूठ’ के कारण बहुत ज़्यादा बढ़ जाती है जिससे उसकी ‘आत्मा’ पर पकड़ और भी ज़्यादा मज़बूत और गहरी हो जाती है। साहिब ने झूठ के नुकसान की व्याख्या अपनी वाणी में बड़े सुन्दर ढंग से की है कि ‘झूठ’ बोलने से बड़ा कोई ‘पाप’ नहीं और ‘सच’ बोलने से बड़ी कोई तपस्या नहीं है।

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

जाके हृदय साँच है, ताके हृदय आप॥

जो व्यक्ति हृदय में सच्चाई धारण कर लेता है, साहिब उसके हृदय में निवास करते हैं। जीवात्मा ‘साधना/कमाई’ के द्वारा ‘निराकार-निरञ्जन’ तक की प्राप्ति तो कर सकती है, लेकिन ‘परमपुरुष’ की प्राप्ति बिना ‘सद्गुरु कृपा’ के इस जीवात्मा को कभी भी नहीं होगी। चाहे कोई, शिव जी की तरह ‘चार युग’ की समाधि में ही क्यों न लीन होकर शब्द-साधना/कमाई करता रहे, ‘सत्यलोक’ की प्राप्ति नहीं कर सकेगा। वाणी है -

कर्म की डोरि बँधा संसारा। क्यों छूटे उतरे भवपारा॥

एक अभंग एकादशी करई। तन छूटे वैकुण्ठहि तरई॥

यह वैकुण्ठ न स्थिर होई। अन्त कर्मगति परलय सोई॥

कौरे कर्म वैकुण्ठहि जाई। कर्म घटे भवजल फिरिआई॥

कोई नग्न कोई वज्र कछोटा। भरमत फिरै सहै पग ढोटा॥

राजद्वार पावै अवतारा। भुगतै कर्म अकर्म व्यवहारा॥

शब्द भेद निःशब्द बताओं। करि निःकर्म हँस मुक्ताओं॥

निरालम्ब अवलम्ब न जाने। शब्द निरंतर आप बखाने॥

### भक्ति भेद और सद्गुरु

सर्गुण-साकार भक्ति में शुभ कर्मों, दान-पुण्य, तीर्थ-व्रत, मंत्र-जाप-हवन, धार्मिक अनुष्ठान, मूर्ति पूजा, ग्रह-नक्षत्र पूजा, देवी-देवताओं की पूजा, त्रिदेव पूजा आदि का महात्तम है। इस भक्ति में ‘गुरु’ नहीं बल्कि ‘कर्म’ प्रमुख है। इस भक्ति की पहुँच केवल स्वर्गादि लोकों तक है। इस भक्ति के द्वारा मनुष्य की ‘आत्मा’ का आवागमन हमेशा के लिए समाप्त नहीं होता।

यह मृत्युलोक है, काल का देश है। इस मृत्युलोक में जीवित महापुरुषों को नहीं बल्कि महापुरुषों की अस्थियों और उनकी तस्वीरों को पूजा जाता है। महापुरुष जब तक इस 'मृत्युलोक' में रहकर जीवों के कल्याण के लिए कार्य करते चलते हैं, तब तक मनुष्य अपनी संकीर्ण मानसिकता के कारण महापुरुषों का जमकर विरोध करता है। उन्हें नास्तिक मानकर उनकी निंदा करता है, उन्हें यातनायें देता है, अपशब्द बोलता है। जब वो महापुरुष शरीर त्याग कर इस संसार से चले जाते हैं तो मनुष्य अपनी की हुई भूल पर पछताता है और फिर उन्हीं महापुरुषों को याद करके अपनी गलतियों के लिए उनसे माफी माँगता है। उन महापुरुषों को अपना आदर्श बनाकर, अपना भगवान बनाकर, अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए जीवन भर उनकी अस्थियों/तस्वीरों को पूजता है। हम संत रविदास का ही उदाहरण लें जिन्होंने मनुष्य और मनुष्य में भेद करने वाले हर सिद्धान्त, कर्मकाण्ड, आडम्बर के विश्वासों पर कटु प्रहार किया और ऐसी भक्तियों को दासता का पोषक बताया। रविदास जी ने जिन मानवतावादी मूल्यों के लिये संघर्ष किया, जैसी आदर्श समाज की कल्पना व अच्छे राज्य की जो अवधारणा पेश की वह आज के भारत के संवैधानिक संकल्पों जैसी है -

ऐसा चाहों राज मैं, जहाँ मिलै सबन को अन्न।

छोट बड़ो सभ सम बसैं रैदास रहे प्रसन्न॥

कहा कि - ईश्वर को जप-तप-व्रत-दान-पूजा-पाठ-गृह-त्याग, इन्द्रिय दमन आदि द्वारा नहीं पाया जा सकता है; यदि वह मिलेगा तो बस मानव-प्रेम में, क्योंकि वह प्रेम में निवास करता है। 'मानुषता को खात है, रैदास जाति को रोग।'।

व्यक्ति उसी वस्तु को प्राप्त करने की चाहत दिल में रखता है जिस वस्तु का व्यक्ति के पास अभाव हो। व्यक्ति अपने जीवन में भौतिक वस्तुओं को प्राप्त करके कितना भी सम्पन्न और खुशहाल क्यों न हो, फिर भी जब परमात्मा को याद करके हाथ जोड़ता है, प्रार्थना करता है, तो दो वस्तुओं को प्राप्त करना कभी नहीं भूलता, जरूर माँगता है - 'सुख और शांति।'।

अब यहाँ एक प्रश्न उठता है कि आखिर भौतिक दृष्टि से सम्पन्न और खुशहाल व्यक्ति को 'सुख' और 'शांति' की माँग क्यों करनी पड़ रही है? इसका अर्थ है कि माँगने वाला व्यक्ति इस बात को जाने-अनजाने समझता है कि इस संसार में उसकी भौतिक-सम्पन्नता, भौतिक खुशहाली स्थिर नहीं है, व्यापक नहीं है जिसके द्वारा उसे हर पल स्थाई सुख और शांति प्राप्त हो। संसार में किसी भी व्यक्ति की भौतिक सम्पन्नता, भौतिक-खुशहाली उस व्यक्ति की 'आत्मा' को सुख और शांति प्रदान नहीं कर सकती। चाहे व्यक्ति पूरी धरती का ही स्वामी क्यों न बन जाए। आत्मा जिस स्थाई 'सुख' और 'शांति' को प्राप्त करने की तलाश में 'मन' और 'इन्द्रियों' के साथ इस संसार में बेवजह यहाँ-वहाँ भटक रही है, उस स्थाई सुख और शांति की प्राप्ति 'आत्मा' को केवल 'सद्गुरु' के 'नाम' द्वारा ही होगी। मेरा प्रत्येक 'नामी' शिष्य इस सत्य का अनुभवी है।

निर्गुण-निराकार भक्ति में केवल 'पाँच-शब्द' और 'पाँच-मुद्राओं' के योग द्वारा आंतरिक साधना/ध्यान/कमाई का महात्तम है। इस भक्ति में 'गुरु' नहीं बल्कि 'क्रियायोग' प्रमुख है। इस भक्ति की पहुँच केवल 'निराकार-निरञ्जन' तक है। इस भक्ति के द्वारा भी मनुष्य की 'आत्मा' का आवागमन हमेशा के लिए समाप्त नहीं होता।

शरीर के बाहर अर्थात् संसार में और शरीर के भीतर अर्थात् ब्रह्माण्ड में 'निराकार मन' की ही हुकूमत है। जो कुछ भी शरीर के बाहर दिख रहा है उसकी उत्पत्ति शरीर के भीतर से ही हो रही है। बिना 'सद्गुरु कृपा' के जीव को बाहर और भीतर का रहस्य किसी भी कीमत पर कभी प्राप्त नहीं हो सकता चाहे कोई कितने भी ग्रंथ/शास्त्र रट डाले, कितनी भी पाठ पूजा कर ले, कितनी भी तपस्या कर ले, कितनी भी साधना कर ले।

साहिब कहते-

धर्मदास तहाँ बास हमारा।

काल अकाल न पाये पारा॥

‘काल’ और ‘अकाल’ दोनों ही संज्ञायें ‘निरञ्जन’ की हैं। ‘परमपुरुष’ का वास, काल और अकाल की सीमा से परे है। जो जीव ‘अकाल पुरुष’ को भज रहे हैं, उसका ध्यान कर रहे हैं, उसका नाम जप रहे हैं; सच यह है कि वे भी ‘निरञ्जन’ की ही भक्ति कर रहे हैं। कर्म और जन्म-मरण के बँधनों से बँधे हुए काल की सीमा और पकड़ के अंदर ही हैं। साहिब कह रहे हैं –

निर्गुण नाम निरञ्जन भाई। जिन सारी उत्पत्ति बनाई ॥  
 निर्गुण सों जु भया ओंकारा। तासों तीनों गुण विस्तारा ॥  
 ओंकार मन आप निरञ्जन। नाना विधि के किये व्यञ्जन ॥  
 मन बोधे मन माहिं समावे। निज पद को कोई नहिं पावे ॥  
 जाय निरञ्जन माहिं समाई। आगे गम्य न काहू पाई ॥  
 आदि भक्ति शिवयोगी केरी। राखी गुप्त न जग में फेरी ॥  
 योग करे औ भक्ति कमावै। अधर एक नामै ध्वनि लावै ॥  
 सो अक्षर है रंकारा। तासों उपजे सकल पसारा ॥  
 तासन मेरी भक्ति न्यारी। जाको क्या जाने संसारी ॥  
 ताको योगेश्वर नहीं पावे। और जीव की कौन चलावे ॥

1. निर्गुण भक्ति योग की ‘चाचरी मुद्रा’ में ‘ज्योति निरञ्जन’ नाम शब्द का योग करके नेत्रों के मध्य ध्यान एकाग्र करने से महातेज की प्राप्ति होती है। इस योग-ध्यान से योगी गोरखनाथ विशेषज्ञ होकर योगेश्वर कहाये।  
 साहिब कह रहे हैं –

ज्योति निरञ्जन चाचरी मुद्रा, सो है नैनन माहिं।  
 तेहि को जाना गोरखयोगी, महातेज है ताहिं ॥

... पर इस मुद्रा से आत्मज्ञान नहीं मिलेगा। हाँ जब तीसरे तिल की कोशिकायें जागती हैं तो ब्रह्माण्ड के अलौकिक रहस्य दिखाती हैं। यह अध्यात्म नहीं है, योग है।

2. व्यास जी ने आज्ञा चक्र में भूचरी मुद्रा से ध्यान एकाग्र करके त्रिकुटी स्थान की कोशिकायें जाग्रत करने के विशेषज्ञ हुए। व्यास जी भी योगेश्वर कहलाये।

**शब्द ओंकार भूचरी मुद्रा, त्रिकुटी है अस्थाना।**

**व्यासदेव ताको पहिचाना, चाँद सूर्य सो जाना।।**

आज भी हमारे देश में बहुत लोग आज्ञाचक्र पर ध्यान रोकते हैं। जब कोई समस्या आती है तो अनजाने में ही आज्ञाचक्र पर ध्यान रोक कर आप बैठ जाते हो।

3. भूचरी मुद्रा से उत्तम है अगोचरी मुद्रा। इसमें साधक भँवरगुफा (मस्तक का ऊपरी स्थान) में ध्यान एकाग्र कर 'सोहंग' शब्द नाम का जाप करता है। योगेश्वर शुकदेव इस ध्यान योग के विशेषज्ञ हुए। इसमें अन्दर अद्भुत धुनें हैं उनमें योगी आनंदमग्न होकर खो जाता है। बंकनाल ऐसा बिन्दु है कि वहाँ पहुँचने पर मन की चंचलता कम हो जाती है। योगी धुनों को ही पराकाष्ठा समझ कर परमात्मा मान लेता है।

**सोहंग शब्द अगोचरी मुद्रा, भँवरगुफा अस्थाना।**

**शुकदेव ताको पहिचाना, सुन अनहद की ताना।।**

साहिब कह रहे हैं – 'दो बिन होय न अधर अवाज्ञा।' धुन दो के बिना नहीं होती। धुनें खुद खत्म हो जाती है। यहाँ द्वैत आ गया वहाँ माया है। हाँ धुनों में लीन होना बड़ी निर्मल अवस्था है। अगोचरी मुद्रा-योग भी देश में अनेक लोग करते हैं।

4. सत्-शब्द जाप से उनमुनि-मुद्रा में आकाशीय ध्यान एकाग्र करने से मस्तिष्क की कोशिकाओं के जाग्रत होने से साधक विदेह रूप होकर आकाशीय ब्रह्माण्डों में विचरण करता है। राजा जनक इस योग-मुद्रा के विशेषज्ञ हुए और विदेही कहलाये। शुकदेव जी ने राजा जनक को गुरु धारण किया। निश्चित ही उनमुनि-मुद्रा में सत्-



शब्द जाप से उपलब्धि का अनुभव अगोचरी मुद्रा से उच्च है। वाणी है—

सत् शब्द सो उनमुनि मुद्रा, सोई आकाश सनेही।  
तामें झिलमिल जोत दिखावे, जाना जनक विदेही॥

5. इन सबसे ऊपर पाँचवी योग-मुद्रा है खेचरी। शब्द जाप 'रंकार' से दसवें द्वार पर ध्यान-एकाग्र कर त्रिदेवों ने 'निरञ्जन' के नाम को जाना। यह योग की सर्वोच्च स्थिति है जिसमें निरञ्जन-लोक तक पहुँच कर साधक निराकार को प्राप्त होता है।

रंकार खेचरी मुद्रा, दसवाँ द्वार ठिकाना।  
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देवा, रंकार को जाना॥

हम सब चिकित्सा विज्ञान के उच्च ज्ञान के युग में हैं जिसमें डाक्टरों ने शरीर रचना की सूक्ष्मता से जानकारी ली है। हर अंग को बदलने यहाँ तक कि ब्रेन और हृदय को भी खोलकर ऑपरेशन करने में सफल हैं। शरीर की तंत्रिकाओं और कोशिकाओं को सुरक्षित करने में सफलता अर्जित कर ली है। फिर भी चिकित्सा वैज्ञानिक मानव तन की कोशिकाओं का पूरा रहस्य नहीं जान पाये कि इनको जाग्रत करके मनुष्य कैसे ब्रह्माण्ड में भ्रमण करता है। वैज्ञानिक, योग-मुद्रा और शब्द की शक्ति का रहस्य नहीं जान सकेंगे। जब कोशिकायें जाग्रत होती हैं तो बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, बड़े ब्रह्माण्ड और अलख-ब्रह्म दिखता है। तभी योगी निराकार भक्ति में अलख-ब्रह्म की बात करते हैं। ऐसे ज्योति-प्रकाश का ज्ञान होता है जिसे परमात्मा माना गया।

पाँच मुद्राओं और शब्दों के विषय में साहिब ने बड़ा प्यारा कहा —

प्रथम पूरन पुरुष पुरातन, पाँच शब्द उच्चार।  
सोहं, सत्, ज्योति-निरञ्जन कहिये, रंकार ओंकार॥  
शब्द ही सगुण शब्द ही निर्गुण, शब्द ही वेद बखाना।  
शब्द ही पुनि काया के भीतर, कर बैठा अस्थाना॥

सिद्ध साध त्रिदेवादि ले, पाँच शब्द में अटके ।

मुद्रा साध रहे घट भीतर, फिर औंधे मुँह लटके ॥

... तो सभी यहाँ तक निरञ्जन/मन तक पहुँचे । औंधे मुँह लटकने का मतलब है, फिर माँ के पेट में आना । यानी फिर जन्म होगा; माया फिर नीचे पटकेगी । साहिब ने ग्यारहवें द्वार अधर ध्यान से सद्गुरु गुप्त-शब्द भक्ति को निरञ्जन के तीन-लोकों के दायरे से बाहर होने की युक्ति बताई ।

नौ द्वारे संसार सब, दसवें योगी तार ।

एकादश खिड़की बनी, जाने संत सुजान ॥

निंदक मेरा सबसे बड़ा प्रचारक है, मेरा सबसे बड़ा सेवक है । निंदक को दिन रात मेरी ही चिंता रहती है, उसका ध्यान मेरी तरफ़ ही रहता है । मेरे पास अधिकतर लोग मेरी निंदा सुनकर ही आते हैं और जब उन्हें हकीकत पता चलती है तो फिर मुझे छोड़कर वापस ही नहीं जाना चाहते । निंदक अपना कीमती समय, अपना धन, अपनी उर्जा मुझ पर ही खर्च कर रहे हैं जिसकी मुझे खुशी है; इसके लिये मैं उनका धन्यवाद करता हूँ । इतनी सेवा तो मेरे सत्संगी नहीं करते जितनी सेवा मेरे निंदक कर रहे हैं । साहिब ने भी अपनी वाणी में निंदक के लिये बड़ा प्यारा कहा कि मेरा निंदक कभी न मरे, युग-युगांतर तक जिये, मेरा ही चिंतन करता रहे, मेरा ही प्रचार करता रहे, ताकि जीव निंदक के द्वारा सत्गुरु को पा ले । वाणी है -

निंदक जीवे युगन युग, काम हमारा होय ॥

निंदक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय ।

बिन पानी साबुन बिना निर्मल करे सुभाय ॥

साहिब ने किसी भी पंथ-धर्म की निंदा नहीं की अपितु सबकी पहुँच बताकर सत्य-मुक्ति का मार्ग दिया ।

साखी पद बोले सब कोई । बिना परिचय मुक्ति नहिं होई ॥

अगम अगोचर गत ब्यौहारा । गहौ ताहि उतरौ भवपारा ॥

यह पूजा है अगम अपारा । खर्चहु खाहु बहु बढै विस्तारा ॥

जो जिव है निज नाम समाना । भये मुक्त जो लोक सिधाना ॥

पूँजी मेरे नाम है, जाते सदा निहाल ।

कहे कबीर मैं पुरुष बल, चोरी करे न काल ॥

एक वैज्ञानिक मिला मुझसे । कहने लगा, कोई आत्मा/परमात्मा नहीं है, सब बकवास है, बेकार और फिजूल की बातें हैं । भोले भाले लोगों को अपने पीछे लगाकर पेट पालने के धंधे हैं सब । यानी, वो वैज्ञानिक सीधे शब्दों में मुझे झूठा कह रहा था । उसके कहने का मतलब था कि सब कुछ अपने आप बना है अर्थात् प्राकृतिक, किसी ने नहीं बनाया । मैंने उस वैज्ञानिक से कहा कि जिस शरीर को धारण किया हुआ है तुमने, क्या वो खुद-ब-खुद बन गया? जो बाकी जीव-जन्तु तुम देख रहे हो, क्या वे खुद-ब-खुद बन गए । जो प्रकृति तुम देख रहे हो क्या वो खुद-ब-खुद बन गई? जिस दिमाग ने तुम्हें वैज्ञानिक बनाया क्या वो खुद-ब-खुद बन गया? जिन आँखों से तुम देख रहे हो क्या वो खुद-ब-खुद बन गई? -जितने भी विचार, सोच, कल्पनायें तुम्हारे दिमाग के अंदर हर पल सृजित हो रही हैं क्या वो खुद-ब-खुद आ गई? जो तत्व तुम देख रहे हो क्या वो खुद-ब-खुद बन गए? क्या तुम्हें दिखाई नहीं दे रहा है कि सब कुछ कितनी प्लानिंग या योजनाबद्ध तरीके से बना है । यह तो तुम्हारे दिमाग का दिवालियापन है जो तुम ऐसा बोल रहे हो । मैंने कहा अभी तुम कच्चे वैज्ञानिक हो । जिस दिन सही में तुम एक अच्छे और काबिल वैज्ञानिक बन जाओगे, परमात्मा को दिन में हजार बार नमस्कार करोगे ।

यह सब आपसे इसलिये कह रहा हूँ कि सद्गुरु कौन है ये बात ठीक से जान लें । जो भी गुरु आप धारण करेंगे वो अपने जैसा कर लेगा आपको । यदि आपका लक्ष्य सत्य-भक्ति जानना है; मोक्ष मुक्ति पाना है तो पहले गुरु की ठीक-ठीक पहचान करनी होगी । एक पूर्ण गुरु या सद्गुरु के लक्षण जानने होंगे तभी आप पूर्ण गुरु खोज सकेंगे; तभी आप सद्गुरु शिष्य बनने के पात्र हो सकेंगे । साहिब ने भक्ति-मार्ग में जगत के लोगों को चेताते हुए कहा -

गुरु गुरु कहि सब विश्व पुकारे। गुरु सोई जो भर्म निवारे॥  
 बहुत गुरु हैं अस जग माहिं। हरें द्रव्य दुःख कोउ नाहीं॥  
 तासे प्रथम परीक्षा कीजै। पीछे शिष्य होय दीक्षा लीजै॥  
 बिन जाने जो कोइ गुरु करहीं। सो नर भवसागर में परहीं॥

### परा-भक्ति ( संत-मत )

परा-भक्ति में केवल 'गुरु' अर्थात् गुरु का ध्यान, गुरु का नाम, गुरु की पूजा, गुरु की कृपा का महात्तम है। इस भक्ति में योग-साधना-कमाई-कर्म नहीं बल्कि 'गुरु कृपा' प्रमुख हैं। इस भक्ति की पहुँच सीधे 'परमपुरुष' तक है, निज अमरलोक है। इस भक्ति के द्वारा मनुष्य की 'आत्मा' का आवागमन सदा के लिए समाप्त हो जाता है। आत्मा अपना निज घर अमरलोक पा लेती है। साहिब ने सच्चे पूर्ण गुरु की पहचान करने सात-लक्षण बताये-

प्रथम लक्षण 'निर्वासना' - निर्वासना से आशय यह है कि गुरु स्त्री सहवास कभी न करें। इसके लिए या तो गुरु को बाल-ब्रह्मचारी होना चाहिए या सन्यास धारण करने के बाद स्त्री सहवास से दूर रहे तभी गुरु-दीक्षा देवे। विवाह से तात्पर्य ही इन्द्रिय सुख की प्राप्ति है और इन्द्रिय सुख का मज्जा लेने वाला सच्चा गुरु कैसे हो सकता है। ऐसे गुरु अपने शिष्यों को इन्द्रिय सुखों से दूर सच्चे सुख 'आत्मज्ञान' की ओर नहीं ले जा सकेगा। वाणी है -

जाका गुरु है गिरही, चेला गिरही होय।  
 कीच कीच के धोवते, दाग न छूटे कोय॥  
 ज्ञान चदरिया जिसने लीनी, मैली कर दे देनी।  
 एक कबीर जतन से लीनी, ज्यों की त्यों धर दीनी॥

दूसरा लक्षण 'निर्बन्धन' - निर्बन्धन से तात्पर्य है उसका भाई-बहनों, बेटे-बेटियों आदि से विशेष स्नेह-नाता नहीं होना चाहिए। गुरु का तो केवल अपने शिष्यों से नाता और विशेष स्नेह होना चाहिए। यदि घर-परिवार के लोगों से विशेष नाता होगा तो शिष्यों द्वारा दिये जाने वाले धन को वह परिवार की सेवा में लगा देगा; परमार्थ के काम में नहीं लगायेगा।

अन्त में ऐसा गुरु अपने बेटे या सगे-सम्बन्धी को अपनी गद्दी और धन-सम्पदा देकर जाएगा चाहे वह उसके लायक हो या नहीं।

संतो ने उदाहरण प्रस्तुत किये। गुरु नानक देव जी के दो बेटे थे श्रीचंद जी और बाबा लख्मीचंद। उन्होंने दोनों में से किसी को अपनी गद्दी नहीं दी। जाते समय 'भाई लहणा' जो आगे चलकर गुरु 'अंगददेव' जी महाराज नाम से प्रसिद्ध हुए, को गद्दी देकर चले गए। किसी भी सच्चे संत और सद्गुरु ने अपनी गद्दी अपने बेटे या सगे-सम्बन्धी को नहीं दी। सबने संत-सम्राट सद्गुरु कबीर की इस शिक्षा को माना -

**'बीज बिन्दु नहीं चले गुरुआई। नाद बिंद से चले गुरुआई॥'** गुरु का कार्य तो शिष्य की आत्मा को मोह-माया से छुड़ाकर उसके सही ठिकाने पहुँचाना है; यदि वह स्वयं ही मोह-माया से ग्रस्त होगा तो यह काम नहीं हो पायेगा।

**बँधे को बँधा मिला, छूटै कौन उपाय।  
कर सेवा निर्बन्ध की, पल में लेय छुड़ाय॥**

तीसरा लक्षण 'सारग्रही' - इससे तात्पर्य है अपनी ही कमाई से खाने वाला, किसी से माँग कर न खाने वाला। गुरु नानक देव जी ने तो यहाँ तक कह दिया कि जो गुरु अपनी कमाई से नहीं खाता, उसके चरणों पर तो कभी माथा ही न टेकना। साहिब ने सीख दी है -

**मांगण मरण समान है, मत कोई माँगे भीख।**

**मांगण से मरना भला, यह सतगुरु की सीख॥**

यदि गुरु स्वयं माँग कर खा रहा है तो वो शिष्यों को भी तो यही सिखायेगा, जैसे आज कल कहीं पर्चियाँ काटकर माँगे, कही हाथों-हाथ माँगना शुरू होगा और कहीं बैंक खातों में जमा करने का नम्बर दिया जायेगा।

चौथा लक्षण 'निलोभी' - अर्थात् गुरु को अपने शिष्यों के धन से प्रेम नहीं होना चाहिए। शिष्यों द्वारा दिये गये धन को परमार्थ के काम में लगाने वाला होना चाहिए। शिष्यों के धन का लालची गुरु उनके धन से परिवार

का पालन-पोषण कर रहा है, महल बनवाकर आराम से बादशाहत का जीवन जी रहा है; ऐसे गुरु के लिये साहिब ने कहा -

गुरु लोभी शिष्य लालची, दोनों खेलें दाँव।

दोनों बूड़े बापुरे, चढ़ि पत्थर की नाव॥

पाँचवाँ लक्षण 'सत्यवान व निष्कामी' - सत्य को संतों ने सब धर्मों का मूल कहा है। सत्यवादी गुरु ही शिष्यों को सत्य की ओर ले जा सकता है-

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

जाके हृदय साँच है, ताके हृदय आप॥

गुरु सत्य नाम सत्य, आप सत्य जो होय।

तीन सत्य जब एक हों, विष से अमृत होय॥

सत्यवान के साथ-साथ गुरु स्वार्थ से रहित होकर समाज का कल्याण करने वाला होना चाहिए। यदि हम संतों की जीवनी पढ़ें तो हमें पता चलता है कि सभी संतों ने समाज की निष्काम भावना से सेवा करते हुए उसे सत्य की राह दिखलाई है। निष्काम भक्ति के लिए साहिब की सीख है -

कबीरा खड़ा बाजार में, माँगे सबकी खैर।

न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर॥

छठवाँ लक्षण 'सर्वज्ञी' - सद्गुरु के लिये छठा प्रमुख लक्षण है 'सर्वज्ञी' होना; अर्थात् सभी धर्म-शास्त्रों का उसे ज्ञान होना चाहिये। ऐसा होने पर ही वह शिष्यों को शंकाओं का निराकरण कर पायेगा। साहिब ने कहा -

जा गुरु ते भ्रम न मिटे, भ्रँति न जिव की जाय।

सो गुरु झूठा जानिये, त्यागत देर न लाय॥

सातवाँ लक्षण 'परमात्मलीन' - सबसे बड़ी बात है परमात्मा में जिसकी आत्मा मिल चुकी हो, जो गुरु 24 घंटे परमात्मा में ही लीन हो वो सद्गुरु है। जिस गुरु में उपरोक्त छः लक्षण विद्यमान हों वो परमात्मलीन पूर्ण-गुरु

होगा। ऐसा सद्गुरु, परमात्मा का सच्चा प्रतिनिधि होता है।

गुरु साहिब तो एक है, दूजा सब आकार।

आपा तज के प्रभु भजे, तब पावे दीदार॥

ऐसे सद्गुरु में ही शक्ति होती है जो इच्छा करने मात्र से शिष्यों के कष्टों को दूर कर देते हैं और उन्हें संसार-सागर से पार कर अमरलोक ले चलते हैं। बिना सद्गुरु की कृपा के जीव इस संसार-सागर से पार नहीं हो सकता। केवल सद्गुरु की भक्ति से ही अखिल ब्रह्माण्ड की भक्ति हो जाती है। क्योंकि सद्गुरु की 'आत्मा' परमपुरुष अर्थात् अमरलोक में ही वास करती है। ऐसे गुप्त रूप सुरति में समाय 'नाम' की उपासना के बाद किसी ओर की उपासना की ज़रूरत नहीं रह जाती है। वाणी है -

बिन सत्गुरु बचिहै नहीं, फिर बूड़े भव माहिं।

भवसागर की त्रासते, सतगुरु पकड़े बांहि॥

यदि आप पूर्ण गुरु की तलाश में हैं तो ऊपर बताए गए प्रमुख सात-लक्षणों को ध्यान में रखना। जब ये लक्षण जिस गुरु में मिल जाएँ तो समझना सद्गुरु की तलाश पूर्ण हुई। एक पूर्ण गुरु ही आपकी 'आत्मा' को उस 'नाम' से प्रकाशित करने में समर्थ होता है जो निःअक्षर है, वेद-शास्त्र-किताबों के पढ़ने-लिखने वाले नामों से परे 'अकह-नाम' है। वो नाम केवल 'आत्मा' सद्गुरु सुरति से ग्रहण करती है।

सगुण भक्ति वर्णनात्मक शब्दों पर निर्भर हैं; निर्गुण भक्ति-योगमुद्रा में धुनात्मक शब्द हैं, जबकि परा-भक्ति मुक्तात्मिक अर्थात् आत्मा के निजधाम का 'अकह' सार-शब्द है।

निरालंब अलम्ब सत्गुरु, एक आसा नाम की॥

गुरु चरण लीन अधीन निशिदिन, चाह नहिं धनधाम की॥

सुत नारि सकल विसारि विषिया, चरण गुरु दृढकै गहै॥

सत्गुरु कृपा दुख दुसह नाशै, धाम अविचल सो लहे॥



पूरे संसार में गुरु और सतगुरु को एक ही सत्ता पर  
स्थापित कर एक ही बात बोली जा रही है।

आओ गुरु और सतगुरु के रहस्य को जानें

“गुरु”	“सतगुरु”
<ol style="list-style-type: none"> <li>1. गुरु केवल काया-नाम का ज्ञाता है।</li> <li>2. काया के जो ध्यान सूत्र हैं, उन्से माया का ज्ञान होता है।</li> <li>3. काया के नाम में गुरु का स्थान ही नहीं है।</li> <li>4. गुरु मन को आत्मा से अलग नहीं कर सकता। और न ही मन काबू कर सकता है।</li> <li>5. गुरु रास्ता बताने वाला है।</li> <li>6. गुरु का नाम लिखने, पढ़ने, बोलने ओर जपने में आता है।</li> <li>7. गुरु शास्त्रों की साक्षी देकर अपना तत्व स्थापित करता है।</li> <li>8. काया का नाम मुर्दा नाम है जो देही को दिया जाता है।</li> </ol>	<ol style="list-style-type: none"> <li>1. सतगुरु ही केवल अकह नाम, विदेह-नाम का ज्ञाता है।</li> <li>2. सतगुरु के अकह नाम व सार-नाम से सुरति को जगाया जाता है जो मन और माया से बाहर जा सकती है।</li> <li>3. विदेह नाम में गुरु का स्थान अष्टम चक्र में होता है</li> <li>4. सतगुरु आत्मा को मन से अलग कर देता है। और मन पूरा कंट्रोल में आ जाता है।</li> <li>5. सतगुरु धुर पहुंचाने वाला है।</li> <li>6. सतगुरु का नाम एक गुप्त पावर है जो जीवन भर आखरी स्वांस तक सेवक की सुरक्षा करती है, यह गुप्त पावर जो लिखने पढ़ने बोलने में नहीं आता है।</li> <li>7. सतगुरु किसी शास्त्र का मुहताज नहीं है। वह अपने अनुभव से देखा हुआ तत्व स्थापित करता है।</li> <li>8. सतगुरु का नाम ज़िन्दा नाम है। जो सुरति को दिया जाता है।</li> </ol>



“गुरु”	“सतगुरु”
<p>9. गुरु की पहुँच केवल दशम-द्वार तक है।</p> <p>10. गुरु भक्ति केवल नाम-कमाई पर केंद्रित है।</p> <p>11. गुरु भक्ति केवल सगुण-निगुण दायरे तक ही सीमित है।</p> <p>12. गुरु तीन-लोक का ज्ञाता है।</p> <p>13. गुरु आत्मा का ज्ञान नहीं दे सकता।</p> <p>14. गुरु मुक्ति नहीं दे सकता।</p> <p>15. गुरु मन-माया की सीमा में बँधा हुआ व्यक्तित्व है।</p> <p>16. गुरु परमपुरुष का भेद नहीं जानता।</p> <p>17. गुरु किसी भी जीव-आत्मा को भवसागर से पार करने की क्षमता नहीं रखता।</p> <p>18. गुरु की पहुँच केवल निराकार सत्ता (काल निरंजन) तक ही है।</p> <p>19. गुरु द्वारा बताए हुए सभी देशों अथवा धुनों का ज़िक्र किया जा सकता है।</p>	<p>9. सतगुरु की पहुँच ग्यारहवें द्वार तक है।</p> <p>10. सतगुरु भक्ति पूरी तरह गुरु ‘कृपा’ पर केंद्रित है।</p> <p>11. सतगुरु भक्ति की सीमा अनन्त तक है, जो सगुण-निगुण से भी आगे है।</p> <p>12. सतगुरु चौथे-लोक का ज्ञाता है।</p> <p>13. सतगुरु आत्मा का समपूर्ण ज्ञान देता है।</p> <p>14. सतगुरु ही केवल पूर्ण-मुक्ति का दाता है।</p> <p>15. सतगुरु मन-माया की सीमा से ऊपर मुक्त एक अमर व्यक्ति तत्व है।</p> <p>16. सतगुरु खुद परमपुरुष में मिला हुआ और उन्हीं का तदरूप है।</p> <p>17. सतगुरु अपनी कृपा से किसी भी जीव-आत्मा को भवसागर से हमेशा के लिए पार करने की क्षमता रखता है।</p> <p>18. सतगुरु की पहुँच सीधा परमपुरुष तक है।</p> <p>19. सद्गुरु के सार शब्द अथवा अमर लोक का खुलासा नहीं किया जा सकता।</p>

## वेद चारों नहीं जानत सत्य पुरुष कहानियाँ

कुरान शरीफ कह रहा है 'बेचूना खुदा'। बेचूना अर्थात् निराकार। ईसा मसीह भी कह रहे हैं मेरा आकाशी पिता (स्वर्गीय पिता) मैं उसका इकलौता पुत्र हूँ। अकाशी पिता अर्थात् निराकार। वेद भी निराकार की बात कह रहा है। **जेजे दृश्यम् तेते अनित्यम्। जेजे अदृश्यम् तेते नित्यम्।** यानि निराकार। हमारे सभी धार्मिक ग्रन्थ भी निराकार तक की बात कहते हैं। भाईयो यह निराकार सत्ता वाला जिसको लोग रब्ब, भगवान, हरि आदि कहते हैं, वह 84 लाख योनियों का रचनहार है परन्तु योनियों को चेतन करने वाली जो ऊर्जा है सुरति है वो कोई और चीज़ है तभी तो इस सिरजनहार निराकार को कबीर साहिब जी बोल रहे हैं।

**मन ही निराकार, निरंजन जानिए।।**

मुक्ति से सबका तात्पर्य निराकार की प्राप्ति। साहिब बन्दगी पंथ किसी की निन्दा नहीं करता। निराकार सत्ता को भी स्वीकार करता है, लेकिन आगे की बात का संकेत भी देता है। संत सम्राट् कबीर साहिब जी ने न्यारा कहा और निराकार सत्ता से आगे कहा। सगुण भक्ति, निर्गुण भक्ति अथवा पाँच मुद्राओं से आगे कहा।

**इसके आगे भेद हमारा। जानेगा कोई जाननहारा।।**

**कहे कबीर जानेगा सोई। जा पर दया सतगुरु की होई।।**

संतों ने आ कर तीन लोक से आगे परम निर्माण, अमर धाम, सत्य लोक अथवा दसवें द्वार से आगे 11वें द्वार का भेद संसार को दिया। भाईयो साहिब बन्दगी पंथ भी काल पुरुष के काया नाम और अमर लोक के विदेह नाम का अंतर समझा कर संसार को सत्य भक्ति की ओर ले जा रहे हैं।

**काग पलट हंसा कर दीना। ऐसा पुरुष नाम मैं दीना।।**

**अकह नाम, लिखा न जाई, पढ़ा न जाई।**

**बिन सतगुरु कोई नाहिं पाई।।**

# गुरु कृपा सों साधु कहावै

जब भी मेरा सत्संगी किसी गैर नामी व्यक्ति से ‘परमपुरुष’ की ‘सत्यभक्ति’ की बात करता है तो यह एक अवसर है जो ‘परमपुरुष’ स्वयं उस व्यक्ति को सत्संगी के माध्यम से देते हैं; कालपुरुष के बँधनों से हमेशा के लिए मुक्त होने का अवसर। साहिब ने जीवों को चेताने के लिए एक अत्यंत सुन्दर उदाहरण देकर गुरु कृपा की महिमा समझाई है।

गुरु कृपा सों साधु कहावै। अनल पच्छ होय लोक सिधावै॥  
अनल पच्छ जो रहै आकाशा। निशि दिन रहै पवन की आशा॥  
दृष्टि भाव तिनरति विधि ठानी। यह विधि गरभ रहे तिहि जानी॥  
अण्ड प्रकाश कीन्ह पुनि तहवाँ। निराधार आलंबहिं जहवाँ॥  
मारग माहिं पुष्टि भौ अंडा। मारग माहिं बिरह नौखण्डा॥  
मारग माहि चक्षु तिन पावा। मारग माहिं पंख परभावा॥  
महि ढिग आवा सुधि भई ताहीं। इहां मोर आश्रय नहिं आहीं॥  
सुरति सम्हार चले पुनि तहवाँ। मात पिता को आश्रम जहवाँ॥  
अनल पच्छ तेहि लेन न आवैं। उलट चीन्ह निज घरहि सिधावैं॥  
बहु पंछी जगमाहिं रहावैं। अनल पच्छ सम नाहिं कहावैं॥  
अनल पच्छ जस पच्छिन माहीं। अस विरले जिव नाम समाहीं॥  
यहि विधि जो जिव चेतै भाई। मेटि काल सतलोक सिधाई॥

सद्गुरु के निःअक्षर शब्द ‘नाम’ को ‘विहंग-शब्द’ अनल-पक्षी के आकाश में ही उत्पन्न होकर पोषित होने के भाव से कहा गया है। विहंग अर्थात् पक्षी। सद्गुरु शब्द का आधार वेद-पुराण-शास्त्र-किताब नहीं है वो तो केवल सद्गुरु ‘सुरति’ में ही पोषित है। यही विहंग शब्द जब सद्गुरु-शरण में आने वाले शिष्य की सुरति को मिलता है तो शिष्य ‘साधु’ होकर सद्गुरु गुणों को धारण करने का पात्र हो जाता है। सद्गुरु-कृपा का पात्र हो जाता है।

अनल पक्षी का जोड़ा आकाश (अंतरिक्ष) में ही रहता है। आकाशीय पवन ही अनल पक्षी का आधार है। अनल पक्षी अपनी मादा के साथ रति-भाव से दृष्टि भर डालता है, और इसी विधि से मादा गर्भवती हो जाती है। जब अनल-मादा अण्डा देती है तो प्रकाश ऊष्मा से ही अण्डा अधर में पक कर खण्ड-खण्ड हो जाता है। अण्डे में से इस प्रकार निकला बच्चा नेत्र खोलता है और पंख निकल आते हैं। आकाश से पृथ्वी की ओर आते-आते अनल-पक्षी के उस बच्चे को यह सुधि आ जाती है कि मेरा घर नीचे नहीं है। इस सुरति के आते ही वह वापस आकाश में अपने माता-पिता के निवास आश्रय की ओर जाता है। माता-पिता लेने नहीं आते उसे, बच्चा खुद सुरति से पहचान कर अपने घर अंतरिक्ष में जाता है। संसार में लाखों पक्षी रहते हैं उनमें एक भी अनल-पक्षी के समान नहीं है। इसी प्रकार जीवों में किसी विरले जन को ही गुरु सुरति से 'नाम' की प्राप्ति होकर आत्मजाग्रति होती है। इस विधि से जो जीव चैतन्य होता है वो 'कालपुरुष' के भ्रमजाल को काट कर निज सत्लोक जाता है।

'मृत्युलोक' में सभी 'शरीर' के संगी-साथी हैं, 'आत्मा' का संगी-साथी कोई भी नहीं है। इस 'मृत्युलोक' में 'आत्मा' का सच्चा संगी-साथी अगर कोई है तो वह केवल एक पूर्ण-गुरु 'सतगुरु' ही है जो 'शरीर' के मिटने के बाद भी 'आत्मा' का साथ निभाते हैं। सतगुरु 'आत्मा' को अपने में समाकर 'सतलोक' पहुँचाते हैं, जहाँ पहुँच कर फिर यह 'आत्मा' दोबारा कभी भी 'मन' और 'माया' के दायरे में वापस नहीं आती।

मैं अपने नामी-सत्संगियों से कहता हूँ कि एक-व्यक्ति को सद्गुरु की सत्य-भक्ति के साथ जोड़ना, एक करोड़ गऊओं को कसाई के चंगुल से छुड़ाने के बराबर है। जो व्यक्ति भक्ति के मूलज्ञान, मूल सिद्धान्त और मूलमार्ग को जाने बिना 'मोक्ष' या 'परमात्मा' को प्राप्त करने की चाहत लेकर भक्ति करता है; ऐसे अज्ञानी व्यक्ति को न तो कभी 'मोक्ष' की प्राप्ति होती है और न ही परमात्मा की। ऐसी दिशाहीन भक्ति करने वाले व्यक्ति के बन्धन और भी गहरे/मजबूत होते चले जाते हैं जिनसे छूट पाना फिर उस

व्यक्ति के लिए नामुमकिन हो जाता है। इस संसार में भेड़चाल की प्रथा है, सब एक-दूसरे की देखा-देखी विवेकहीन भक्ति कर रहे हैं। इसलिये सभी भक्ति के मार्ग से भटके हुए हैं, भौतिक क्रियाओं और बाहरी आडम्बरों में उलझकर अपने अति बहुमूल्य जीवन को व्यर्थ में ही गंवा रहे हैं।

मानव शैतानी 'हत्यारी' शक्ति के पंजे में है; परमपुरुष के हाथों में नहीं। निराकार 'मन' ही वो अदृश्य शक्ति है जिसे मनुष्य परमात्मा मानकर पूज रहा है। निराकार मन के अलावा दूसरा कोई आपका शत्रु नहीं है। यह त्रिलोक सृष्टि ही काल निरञ्जन का घर है, इससे निकालने वाला केवल 'सद्गुरु' ही मुक्तिदाता है। कर्मों के आवरण में 'आत्मा' को बाँधने निरञ्जन ने ही धर्म बनाये हैं परमपुरुष साहिब ने नहीं। ध्यान ही 'आत्मा' है; इसलिये 'मन' कभी भी ध्यान को सत्यभक्ति की ओर जाने ही नहीं देता, संसार में ही हर पल लगाय रहता है।

जिस ध्यान ने 'परमतत्त्व' की अनुभूति करनी है वह ध्यान 'मन' के साथ संसार (माया) में रमा हुआ है मन का भौतिक संसार 'ध्यान' की ताकत के द्वारा ही क्रियाशील हो रहा है। मन जानता है कि ध्यान (आत्मा) के बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं है, सब कुछ शून्य है। इसलिये मन 'ध्यान' को एक पल के लिये भी एकाग्र नहीं होने दे रहा है। बाहरी संसार में और बाहरी क्रियाओं में 'ध्यान' को उलझाये हुए है। ध्यान कोई मामूली वस्तु नहीं है। सृष्टि की पूरी रचना का भेद आपके 'ध्यान' के अन्दर है। साहिब ने बताया है कि धरती पर 360 स्थान ऐसे हैं जहाँ पर 'काल निरञ्जन' (मन) ने अपनी 'मायावी शक्तियों' को स्थापित किया हुआ है। मनुष्य उन सभी स्थानों पर 'काल' की मायावी-शक्ति के चमत्कार को देखकर अपनी सुध-बुध खो बैठा है और भूलवश उन्हें ईश्वरीय शक्तियाँ मानकर फिर उन्हीं मायावी शक्तियों का प्रचार करता हुआ संसार में घूमता रहता है। केवल संत-सद्गुरु ही काल की इस माया को समझते हैं; बाकी संसार तो माया के चमत्कारों का दीवाना है।

## सद्गुरु में विश्वास से मुक्ति

सद्गुरु में पूर्ण विश्वास का अर्थ है 'आत्मा' की स्थाई मुक्ति। सत्य-भक्ति में केवल एक सच्चा गुरु ही 'नाम' दान देने में समर्थ है। इस बात से अनजान रहना अज्ञानता है जबकि 'नाम' से जाग्रत होने वाला साधु सब कुछ प्राप्त कर लेता है। यह भलिभाँति जान लें कि इस नश्वर संसार का मज्जा लेने वाले 'आप' नहीं हैं, 'निराकार-मन' ही आपका और इस संसार से आपके लगाव का मज्जा ले रहा है।

आपका 'आपा' 'मन' है जो आत्मा को उलझाये हुए है। एक सच्चा 'सद्गुरु' ही अध्यात्म का इस सृष्टि में एकमात्र ज्ञानदाता है जो 'मन' की कार्यपद्धति और सीमाओं को जानता है। सृष्टि के समस्त छिपे रहस्य मनुष्य की 'सुषुम्ना नाड़ी' में हैं जो शरीर की 72- नाड़ियों में सबसे उत्तम 'रानी-नाड़ी' कही जाती है। तुम 'आत्मा' के धारक नहीं अपितु खुद 'आत्मा' हो। तुम्हें शरीर रूपी कैद में आदिकाल से रखकर 'मन' रूप काल निरञ्जन शासन कर रहा है। सृष्टि में 'आत्मा' का सच्चा 'रक्षक' केवल सद्गुरु है। अन्य कोई गुरु अथवा देव में यह ताक़त नहीं है कि वह 'आत्मा' को 'काल' के जाल से मुक्त कर सके।

केवल जीवंत और अकह पवित्र 'नाम' ही वो औषधि है, जो 'आत्मा' के अति कष्टदायक और असाध्य रोग का जड़ से निदान करती है। काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार तो निराकार-मन की ही वृत्तियाँ हैं 'आत्मा' या परमपुरुष की नहीं। 'ओंकार' निरञ्जन है, 'साहिब' नहीं। कबीर साहिब ने एक अनश्वर लोक 'अमरलोक' का भेद दिया जो कि इस सृष्टि से परे 'आत्मा' का मूल घर है।

परमपुरुष के अलावा दूसरी कोई भी सत्ता 'परमात्मा' नहीं है। मनुष्य ने इस धरती पर अपने खुद के जितने भी परमात्मा धारण किये हुए हैं, उन सबकी रचना 'मन' और 'माया' (आद्यशक्ति) के द्वारा हुई है और सभी 'मृत्यु' के आधीन हैं। 'परमपुरुष' न कभी जन्मते हैं और न ही कभी उनकी

मृत्यु होती है। परमपुरुष न तो कभी इस 'तीन लोक' में... 'अवतार' धारण करके जीवों को 'मायावी लीला' दिखाने के लिये आते हैं और न ही कभी इस 'तीन लोक' में जीवों को मार-काट कर अपनी ताकत का प्रदर्शन करके जाते हैं। कबीर साहिब ने ही सर्वप्रथम उस एक 'परमपुरुष' की भक्ति का रहस्य और ज्ञान सम्पूर्ण मानवता को दिया। साहिब ने कहा, जीवात्मा को 'नाम' की प्राप्ति न तो 'कबीर' के द्वारा ही होगी और न ही 'परमात्मा' के द्वारा; अगर होगी तो केवल एक पूर्ण 'सत्गुरु' के द्वारा ही होगी।

एक 'सच्चा साधु' संसार की धन-दौलत का भूखा नहीं होता, वह तो केवल सच्चे-भाव का भूखा होता है। जो संसार में साधु बनकर धन-दौलत इकट्ठी कर रहा है, वह साधु के वेष में एक चालाक और ढोंगी व्यक्ति है। ऐसे बहुरूपिये से हमेशा के लिए किनारा करना ही बेहतर है।

'आत्मा' को खुद का ज्ञान नहीं है इसलिये आत्मा अपने आपको स्त्री/पुरुष मान रही है जोकि केवल 'शरीर' की संज्ञा है। जब 'आत्मा' को खुद का ज्ञान नहीं है तो यह हर उस वस्तु/पदार्थ को अपना मान रही है जिसके साथ 'आत्मा' का कोई भी सम्बंध नहीं है। यह सारा भ्रम 'अज्ञान' के कारण आया। आत्मा ने 'मन' को ही अपना रूप मान लिया है इसलिये आत्मा 'मन' की हरेक इच्छा को अपनी ही इच्छा मान रही है। 'मन' की वृत्तियों को अपनी ही वृत्तियाँ मान रही है; 'मन' की आज्ञा को 'परमपुरुष' की आज्ञा मान रही है। आत्मा को 'मन' ने ही 'शरीर' रूपी 'पिंजरे' में बाँधा हुआ है। यह 'तीन लोक' पूरा 'मन' ही है इसलिये जब तक आत्मा इस तीन-लोक के दायरे में है, तब तक आत्मा 'मन' के आधीन है, शरीर के बँधन में है। यह बँधन इतने मज़बूत और विशाल हैं कि आत्मा अपनी स्वयं की कोशिश से कभी भी 'मन' के दायरे से 'मुक्त' नहीं हो सकती। आत्मा को 'मुक्ति' केवल एक पूर्ण 'सत्गुरु' से नाम प्राप्ति द्वारा ही होगी।

भक्ति का एक ही परम लक्ष्य है 'मुक्ति'। मुक्ति की बात संसार के सभी मान्य धर्मग्रंथ/शास्त्र कर रहे हैं। इसका मतलब है कि संसार में रहने वाले

सभी जीव किसी बँधन में हैं। अगर बँधन में नहीं होते तो धर्मग्रंथ/शास्त्र कभी भी 'मुक्ति' की बात नहीं करते। जब सभी बँधन में हैं तो फिर छुटने की कोशिश क्यों नहीं कर रहे हैं? जब तक बँधन, बँधने वाला, बाँधने वाला, इन तीनों का बोध नहीं होगा तब तक 'मुक्ति' के सही स्वरूप को नहीं समझा जा सकेगा।

निरञ्जन (कालपुरुष) तीन-लोक सृष्टि के विधाता और आद्यशक्ति (माया-शरीर) में यह समझौता है, कि निरञ्जन 'मन' बनकर अलोप रहेगा और आद्यशक्ति प्रकृति-शरीर बनकर सबको भ्रमित रखेगी यह भेद किसी को नहीं देगी। संसार में 'मन' है, 'शरीर' है, 'कर्म' है इसलिये यहाँ पर कभी भी स्थाई और पूर्ण 'शांति' नहीं मिल सकती, आनन्द नहीं मिल सकता। जीवात्मा जिस स्थाई/सम्पूर्ण शांति और आनन्द की तलाश में अनादिकाल से इस संसार में भटक रहा है; वो स्थाई/सम्पूर्ण शांति और आनन्द जीवात्मा को केवल 'अमरलोक' में ही प्राप्त होगा, क्योंकि वहाँ पर 'मन' नहीं है, 'शरीर' नहीं है, 'कर्म' नहीं है। जीवात्मा को इस संसार में भ्रमित करके 'शरीर' और 'कर्म' के बँधन में बाँधने वाला कोई और नहीं, बल्कि स्वयं 'मन' है।

दोस्ती की आड़ में दुश्मनी का वास होता है। इसलिये मैंने कभी किसी को अपना दोस्त बनाया ही नहीं, तो दुश्मनी किसी से हुई नहीं। मधु अकेला घूमता फिरता है। जहाँ जाना है, झोला उठाकर अकेला ही चल पड़ता हूँ, बहुत कड़ी मेहनत करता हूँ। आपको सच बता रहा हूँ, घमण्ड नहीं है; किसी महात्मा में मुझ जैसी 'निर्भयता' और 'लगन' नहीं देखोगे। सबमें भीतर से 'डर' और 'आलस्य' मिलेगा, सबके साथ अंगरक्षक मिलेंगे। जितनी नज़दीकी मैंने अपनी संगत/अनुयाइयों के साथ रखी है, दूसरा कोई भी गुरु इतनी गहराई के साथ नहीं जुड़ा है, यह मैं ठीक-ठीक जानता हूँ। जीवन का एक ही 'लक्ष्य' हैं, ज़्यादा से ज़्यादा जीवों को 'सत्य-भक्ति' के साथ जोड़ना; केवल जोड़ना ही नहीं, उन्हें पक्का 'मन' और 'माया' के चंगुल से 'मुक्त' करवाना।



‘परमपुरुष’ का निवास चौथा लोक अर्थात् ‘अमरलोक’ है, इस ‘तीन-लोक’ में नहीं। अज्ञानवश संसार के लोग ‘परमपुरुष’ को ‘काल निरञ्जन’ द्वारा सृजित इस नाशवान ब्रह्माण्ड में खोज रहे हैं। ऐसा नहीं है कि केवल अनपढ़/बुद्धिहीन/गरीब/कमजोर लोग ही ‘मन’ के इशारों पर नाच रहे हैं। क्या पढ़ा-लिखा, क्या विद्वान, क्या धनवान, क्या ताकतवर, क्या बुद्धिजीवी, क्या ज्ञानी, क्या ध्यानी; सभी ‘मन’ के इशारों पर नाच रहे हैं। सभी ‘मन’ की गुलामी कर रहे हैं, सभी ‘मन’ के आधीन हैं।

सभी लोग एक-दूसरे को हिन्दू की दृष्टि से, मुस्लिम की दृष्टि से देख रहे हैं। सिक्ख की दृष्टि से, ईसाई की दृष्टि से देख रहे हैं। जैनी की दृष्टि, बौद्धिष्ट की दृष्टि से देख रहे हैं। आपकी इस भौतिक दृष्टि का संचालन आपकी ‘बुद्धि’ कर रही है, जो ‘मन’ का ही रूप है। जब तक ‘बुद्धि’ के आधीन हो तब तक किसी भी प्राणी में ‘आत्मा’ नहीं दिखेगी; दिखेगा तो केवल ‘शरीर’ ही दिखेगा।

‘मन’ तीन बहुत ही खास चीजों के प्रति आपके ‘ध्यान’ को उच्चाट करेगा। पहला- सतगुरु का दर्शन, दूसरा - सतगुरु का सुमिरन, तीसरा - सतगुरु का सत्संग; ‘मन’ को इन तीन चीजों से बहुत खतरा है। ऐसा क्यों? मन यह बात अच्छी तरह से जानता है कि सतगुरु उसका पूरा ‘खेल’ जानते हैं और सतगुरु के आगे उसका कोई ज़ोर नहीं चलता। इसलिये ‘मन’ भीतर से ही जीव को उच्चाट करता है।

अगर एक किरायेदार ‘किराये के मकान’ को अपना मकान मान ले, खुद को मकान मालिक समझ ले, तो यह केवल उसकी मूर्खता है। इसी प्रकार ‘आत्मदेव’ भी शरीर रूपी मकान में रहने वाला मात्र एक किरायेदार है जो मूर्खतावश इसे अपना ‘खुद का मकान’ (शरीर) मान रहा है। सच यह है कि आत्मदेव इस शरीर रूपी मकान का असली ‘मालिक’ नहीं है; वास्तव में इसका असली मालिक ‘काल निरञ्जन’ है। अगर यह स्थूल संसार ‘परमपुरुष’ की रचना होती तो फिर साहिब को इस संसार में अवतरित होने और यह कहने की कोई ज़रूरत ही नहीं थी कि इस संसार

का रचयिता 'कालपुरुष' है। संसार में रहकर संसार की 'माया' को त्यागना मुश्किल नहीं, कोई भी त्याग सकता है; लेकिन 'मान' को त्यागना नामुमकिन है। 'मान' की भूख उन सबको खा गई जिन्होंने संसार की माया का त्याग करके 'परमपुरुष' को प्राप्त करना चाहा।

## हम कबीर पंथी नहीं हैं

साहिब का 'आध्यात्मिक ज्ञान' मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार और इन्द्रियों की सीमा से बाहर का 'परमज्ञान' है। इसे केवल 'सुरति' द्वारा ही समझा और जाना जा सकता है। हम 'कबीर पंथी' नहीं हैं क्योंकि हम कबीर साहिब की उपासना नहीं कर रहे हैं। कबीर साहिब जानते थे कि उनके जाने के बाद कलियुग के लोग उनके नाम का दोहन अपने-अपने स्वार्थ के लिये करेंगे। इसलिये वह पहले ही स्पष्ट रूप में इस बात की पुष्टि अपनी वाणी में करके गए कि जीव को 'सत्य' की प्राप्ति केवल एक पूर्ण गुरु की भक्ति के द्वारा ही होगी, कबीर की भक्ति के द्वारा नहीं। साहिब वाणी है -

गुरु की महिमा अगम है, अकह कही न जाय।  
 गुरु पद रज हिय में धरै, सत्यलोक कहँ जाय॥  
 सत्यलोक सतगुरु को वासा। ब्रह्म कीन्ह गुरु माहिं निवासा॥  
 गुरु के चरण रहै लौलाई। ताकी महिमा वर्णि न जाई॥  
 गुरु और शब्द एक कर जाना। ताकी त्रास धर्म भय माना॥  
 जो कोई यह भेद न जानै। धर्मराय ताकहँ सन्मानै॥  
 सकल पसारा शून्य समाना। शून्यहि माहीं शब्द बखाना॥  
 शून्य शिखर की डोरी पावै। देह छोड़ सतलोक सिधावै॥  
 गम्य अगम्य ज्ञान जब पावै। आतम ज्ञान तब घटहि समावै॥  
 सत्य शब्द जब रहै समाई। सबही ठाम लोक है भाई॥

मन और माया ने अपना भेद इस तीन लोक में किसी को नहीं दिया, त्रिदेव को भी नहीं। साहिब ने ही सर्वप्रथम समस्त मानव-जाति को मन और माया का सम्पूर्ण भेद दिया और साथ ही उस चौथे लोक 'अमरलोक'

का भेद भी दिया जिसे मन और माया ने मिलकर सृष्टि के प्रारम्भ से ही सभी जीवों से छुपाय रखा।

संसार को भक्ति और मुक्ति का सहज मार्ग साहिब ने दिया। सबसे उत्तम और सबसे श्रेष्ठ ज्ञान है - 'आत्मज्ञान'; जीव को आत्मज्ञान की प्राप्ति केवल पूर्ण 'सद्गुरु' के द्वारा ही होगी। जीव अपना 'आत्मा कल्याण' एक पूर्ण सद्गुरु की शरण प्राप्त करके सहज ही कर सकता है।

संसार में जितनी भी 'ध्यान पद्धतियाँ' प्रचलित हैं, वे सभी मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार द्वारा संचालित और निर्दिष्ट हैं। उन सभी पद्धतियों के द्वारा केवल हमारे शरीर की सूक्ष्म कोशिकायें ही जागती हैं, हमारी 'आत्मा' नहीं। पृथ्वी पर रहने वाला मनुष्य और देवलोक में रहने वाले देवी-देवता सभी 'काल निरञ्जन' का ही ध्यान कर रहे हैं, किसी को भी इस गुप्त भेद का पता नहीं है।

देवी देवल जगत में कोटिन पूजे कोय।

सद्गुरु की पूजा किये सबकी पूजा होय॥

जो निराकार निरञ्जन (मन) की उपासना कर रहा है, वो 'गुरु' है। जो पूर्ण रूप से 'परमपुरुष' साहिब में समाकर उन्हीं का तद्रूप हो चुका है, वो 'सद्गुरु' है। गुरु 'जीवात्मा' को मन-माया के भवसागर से स्वयं मुक्त नहीं करवा सकता, लेकिन 'सद्गुरु' जीवात्मा को मन-माया के भवसागर से स्वयं मुक्त करवाता है; साहिब ने ही सर्वप्रथम यह रहस्य मानवता को दिया।

परमपुरुष से सच्ची लगन एक शब्द नहीं है। वो 'शब्द' तो एक गुप्त प्रतिज्ञा है जो कहता है ... मैं था, मैं हूँ और सदा तुम्हारे साथ रहूँगा। वो शब्द 'नाम' विदेह है, जीवंत है, बावन अक्षरों की सीमा से बाहर है। वो 'नाम' केवल एक पूर्ण 'सद्गुरु' की 'सुरति' में है और केवल सद्गुरु की शरणागति होने पर ही उस सच्चे विदेह 'नाम' की प्राप्ति जीवात्मा को होगी।

इस ब्रह्माण्ड में रहने वाला हरेक जीव भ्रमवश खुद को आजाद समझ कर जीवन जी रहा है, पर हक़ीकत में हरेक जीव बँधा हुआ है, जकड़ा हुआ

है, कैद है। संसार में जितने भी अवतार आए, सभी ने 'कालपुरुष' की ही भक्ति की, कालपुरुष का ही ध्यान किया, कालपुरुष का ही सुमिरन किया, कालपुरुष का ही पैगाम दिया। 'कालपुरुष' ने सभी से अपनी 'मायावी शक्तियों' का प्रचार और अपनी 'मायावी लीला' की जय-जयकार करवाई ताकि संसारी जीवों को यह पक्का भरोसा हो जाय कि वो सब एक 'भक्षक' की नहीं बल्कि एक सच्चे 'रक्षक' की देखरेख में जी रहे हैं। इस प्रकार 'कालपुरुष' ने सभी को भ्रमित कर दिया, सभी भटक गए, सभी 'शरीर' बनकर इस तीन-लोक की 'माया' में अटक गए।

मनुष्य को अपने बारे में और जीवन के बारे में केवल इतना ही ज्ञान है कि मैं स्त्री/पुरुष हूँ, मेरे माता-पिता हैं, मेरे भाई-बहन हैं, मेरा घर-परिवार है, मुझे भगवान ने बनाया है, इस दुनिया को भगवान ने बनाया है, इस दुनिया को भगवान चला रहा है; सभी धर्म भगवान के बनाये हुए हैं किसी को भी मानो, किसी की भी पूजा करो, सभी भगवान का ही रूप हैं। मुझे पढ़-लिख कर अच्छी नौकरी करना है, मुझे व्यापार करना है, मुझे खूब नाम/धन कमाना है, मुझे बहुत बड़ा आदमी बनना है। मुझे शादी करनी है, मुझे अपना परिवार बनाना है, आदि-आदि। 'मन' और 'माया' ने अपनी गुलामी करवाने के लिए इस जीवन के प्रति संसारी मनुष्य को केवल इतनी ही सोच-समझ दी है। इतना ही बोध दिया है।

पूरा संसार 'प्रेम' की बात तो करता है लेकिन 'प्रेम' की यथार्थ परिभाषा नहीं जानता है, प्रेम की सच्ची परख नहीं रखता है, प्रेम के मूल स्वरूप को नहीं पहचानता है। प्रेम की यथार्थ परिभाषा और यथार्थ स्वरूप को कोई विरला संत ही पहचानता है। कोई विरला संत ही 'प्रेम' की सच्ची परख रखता है। 'सत्य' का बोध केवल एक पूर्ण 'सद्गुरु' को है और उसी के द्वारा प्राप्त होगा। संसार झूठ में रमा है, इसलिये संसार को न तो 'सत्य' का बोध है और न ही 'सद्गुरु' का। संसार के लोग 'मन' और इन्द्रियों के गुलाम हैं इसलिये सभी की सोच/समझ/चेष्टायें मन और इन्द्रियों तक ही सीमित हैं। संसार के लोग अनादिकाल से मनमाने ढंग से 'सत्य'

को खोज रहे हैं। संसार को भटकाने वाला और सत्य से दूर रखने वाला कोई ओर नहीं बल्कि स्वयं 'मन' है, जिसके भ्रमजाल में पूरा संसार फँसा हुआ है।

अगर 'मन' को स्थूल रूप में देखना हो तो व्यक्ति (स्त्री/पुरुष) खुद को अर्थात् 'शरीर' को देख ले। व्यक्ति और व्यक्तित्व, दोनों ही मन हैं। इन दोनों के बीच में 'आत्मदेव' (हँसा) अनादिकाल से क्रैद है, बँधा हुआ है, जकड़ा हुआ है, निकल नहीं पा रहा है। 'आत्मदेव' चाहे कितनी भी युक्ति अपना ले, पर बिना 'नाम' की ताक़त के कभी भी 'मन' की मार से नहीं बच पायेगा, 'मन' की पकड़ से नहीं छूट पायेगा, 'मन' के दायरे से बाहर नहीं निकल पायेगा।

हमारा ना तो इस धरती पर किसी के साथ कम्पीटिशन है और ना ही इस ब्रह्माण्ड में किसी के साथ कम्पीटिशन है क्योंकि जो वस्तु हमारे पास है वो इस ब्रह्माण्ड तीन लोक में कहीं भी नहीं है।

जिस प्रकार धरती पर 'हँस' और 'पारस पत्थर' दुर्लभ हैं, ढूँढ़ने से भी नहीं मिलते; ठीक इसी प्रकार 'संत' भी अतिदुर्लभ हैं। एक सच्चे 'संत' की प्राप्ति केवल उन्हीं जीवों को होती है जिन पर या तो 'परमपुरुष' साहिब कृपा कर दें या फिर 'संत' ही दया कर दें, क्योंकि स्वयं 'परमपुरुष' भी एक सच्चे और पूर्ण 'संत' के हुकुम की पालना करते हैं।

आपन रूप आप नहिं चीन्हा। तातें आवागमन कर लीन्हा ॥  
 न कोई आया न कोई गया। मन के मते जन्मतें भया ॥  
 मन ही ज्ञानी मूरख कहिये। मन ही ब्रह्म रूप यह लहिये ॥  
 मन का है यह सकल पसारा। मन ही पाप पुण्य विस्तारा ॥  
 मन ही मोह काम उपजावै। मन ही आशा तृष्णा लावै ॥  
 मन ही देहरा देव पसारा। मन ही पूजे पूजन हारा ॥  
 मन ही नार पुरुष कर जाना। मनहिं पुत्र मन बाप बखाना ॥  
 मन ही राजा रय्यत कहिये। मनहिं दीवान मनहि मिलि रहिये ॥

कहे कबीर यह मनहि है, मन का सकल पसार।

मन चीन्हेते अमर है, गह निःअक्षर सार ॥

मनुष्य जितनी भी क्रियायें जीवन में कर रहा है, दिमाग की प्रेरणा द्वारा ही कर रहा है। दिमाग के हर आदेश की पालना पूरे संसार के लोग कर रहे हैं। दिमाग को आदेश कौन दे रहा है? दिमाग को आदेश 'मन' दे रहा है। दिमाग 'मन' का गुलाम है। मन आदेश किस सूत्र से दे रहा है? मन 'तरंगों' द्वारा अपना हरेक आदेश दिमाग तक पहुँचा रहा है। मन कहाँ बैठ कर दिमाग पर अपनी हुकूमत चला रहा है? मन 'सुषुम्ना नाड़ी' के मध्य में बैठकर दिमाग पर अपनी हुकूमत जमाये हुए है। इस संसार को साहिब ने और बाकी संतों ने ऐसे ही 'स्वप्नवत्' नहीं कहा, 'मिथ्या' और 'भ्रामक' नहीं कहा। कुछ वजह है इन तथ्यों में, कुछ गहरे रहस्य हैं उनकी वाणी में। दिमाग आपके अन्दर नहीं है बल्कि आप सब 'दिमाग' के अन्दर समाये हुए हैं; इसलिये आप सब दिमाग के गुलाम हैं, भ्रम में हैं, अज्ञान में हैं, अँधकार में हैं।

इन्सान ने बहुत से भगवान बना लिये हैं, आगे भविष्य में भी और कई नए भगवान बनायेगा इन्सान। हर धर्म का अपना-अपना भगवान है। ऐसा कहना भी ग़लत नहीं होगा कि अब तो हरेक बिरादरी/जाति का अपना खुद का एक भगवान है। इन्सान अपनी सहूलियत देखकर ही खुद के लिए भगवान चुनता है और फिर अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये उसकी आराधना करता है। अगर चुना हुआ भगवान स्वार्थों की पूर्ति ठीक ढंग से नहीं कर पाता है तो इन्सान फिर उसकी जगह कोई दूसरा भगवान चुनने में देरी नहीं करता। इन्सान खुद के बनाये हुए भगवानों के भ्रमजाल में पूरी तरह से उलझ चुका है—इसलिये भीतर से अशांत है, परेशान है, दुविधा में है, स्थिर नहीं है। सभी शरीर और इन्द्रियों का 'सुख' खोज रहे हैं। एक बात याद रखना जिन-जिन पदार्थों में आप 'सुख' खोज रहे हैं उनमें सुख नहीं है। संसार के सारे सुख मन का भ्रम हैं।

जिन जीवों के हृदय में लोक-लाज का भय और अपने ऊँचे कुल-जाति-धर्म का घमण्ड समाया रहता है; वे कभी भी 'सत्य-भक्ति' का मार्ग धारण नहीं कर पाते और न ही कभी 'सत्य' अर्थात् 'सद्गुरु की कृपा'

के पात्र बन पाते हैं। ऐसे अज्ञानी जीव अपने घमण्ड के कारण ही मन और माया (शरीर) की दलदल में फँस कर अनन्त जन्मों तक बार-बार के आवागमन (जन्म-मरण) का दुःख भोगते रहते हैं।

मन को किसी की गुलामी पसंद नहीं क्योंकि 'मन' स्वयं इस 'तीन लोक' का राजा है, मालिक है। मन का साम्राज्य सप्त-पाताल, पृथ्वी लोक, पितृलोक, स्वर्ग लोक, देवलोक, सिद्ध लोक, ब्रह्म लोक, परब्रह्म लोक आदि सभी लोक-लोकान्तरों में समान रूप से स्थित है। आत्मा इस 'तीन लोक' के दायरे में 'मन' के आधीन, मन की गुलाम है। जब तक 'मन' आज़ाद है तब तक 'आत्मा' गुलाम बनकर 'मन' की हरेक 'आज्ञा' को मानती चलेगी। मन की आज़ादी के कारण ही 'आत्मा' को बार-बार चौरासी का चक्र काटना पड़ रहा है।

मन को अगर कोई बाँध कर अर्थात् उस पर सवार होकर अपने अधीन कर सकता है तो वह केवल एक पूर्ण 'सद्गुरु' ही कर सकता है। सद्गुरु के पास 'सजीवन नाम' रूपी रस्सी है जिसके द्वारा वह पल भर में 'मन' को बाँधकर, मन पर नकेल लगाकर उसे 'आत्मा' का गुलाम बना देता है। आत्मा फिर 'मन' के कहने पर नहीं चलती, क्योंकि 'आत्मा' को यह जानकारी हो जाती है कि उसका 'मन' से बड़ा दुश्मन दूसरा कोई भी नहीं है।

शब्द बिना आतम दृग हीना। सद्गुरु संग यहि कहि दीना।

शब्द नैत्र जबहि लख पावा। सद्गुरु मिलि निज घरहि सिधावा।।

ऐसी मति जाही घट होई। हँस हिरम्भर कहिये सोई।।

तिनकहँ जानहु हमहिं स्वभाऊ। हमहु नहीं कछु ताहिं दुराऊ।।

सोहं सोहं सत्य कबीरा। शब्द मंत्र है प्रकट शरीरा।।

यहाँ ग्रंथ मैं मंत्र सुनावा। चारहि वेद का मूल बतावा।।

षटै शास्त्र मिल करहिं विचारा। प्रकट ब्रह्म यह ज्ञान विचारा।।

ऐसा ज्ञान जब ऊपजै, सुनहु हो धर्मदास।

परकट ब्रह्म स्वरूप है, एक नाम विश्वास।।

## मैं ( खुदी ) से निकलना मुक्ति है

आप सब न तो शरीर हैं, न ही इन्द्रियाँ हैं, न मन हैं, न ही बुद्धि हैं, न चित्त हैं, न ही अहंकार हैं। आप न विचार हैं, न ही कल्पना हैं, न पुरुष हैं, न ही स्त्री हैं, न आत्मा हैं, न ही परमात्मा हैं। न मनुष्य हैं, न ही देवता हैं। आप सब केवल 'मूल सुरति' हैं। आप सब 'परमपुरुष' का मूल अंश हैं। आप सब अनादिकाल से 'मन' के साथ शरीर रूपी पिंजरे में रह रहे हैं इस कारण अपना 'मूल स्वरूप' भूल चुके हैं। खुद को शरीर और 'मन' मानकर भ्रमजाल में जी रहे हैं।

मन पर सवारी करने का मतलब है अपनी 'मैं' अर्थात् अपनी 'खुदी' पर सम्पूर्ण नियंत्रण करना। इस 'मैं' में क्या-क्या है, आओ देखते हैं। इस 'मैं' में सबसे पहले आता है, 'स्थूल शरीर' अर्थात् 5-कर्मेन्द्रियाँ, 5-ज्ञानेन्द्रियाँ, 5-तत्व, 25-प्रकृतियाँ, 5-शब्द, 5-शरीर, 7-चक्र, 14-लोक और 14-देवता। इस 'मैं' (खुदी) में शरीर के बाद आता है 'मन' अर्थात् मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार-काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार-इच्छायें-विचार-संकल्प/विकल्प-सोच-कल्पना-संस्कार आदि। ये सब मिलकर 'मैं' बनती है। यह 'मैं' ही 'मन' है। ये समस्त तीन-लोक इसी 'मैं' अर्थात् मन में समाये हुए हैं। इसी 'मैं' के बीच में 'आत्मदेव' कैद है। इस 'मैं' से बाहर निकलना ही 'मोक्ष' है।

बुद्धि की रचना पूर्व जन्म के संस्कारों (प्रारब्ध) के अनुसार होती है। जैसे संस्कार मिलेंगे वैसी ही बुद्धि मिलेगी। संसार में बहुत से लोग ऐसे हैं जो 'आत्मा' को नहीं मानते, 'परमात्मा' को नहीं मानते, 'पुनर्जन्म' को नहीं मानते। ऐसे विचार उनकी बुद्धि में क्यों हैं? पूर्व जन्म के निकृष्ट संस्कारों के कारण ऐसी विचारधारा है। ऐसे लोगों के विचार सुनकर आप फिजूल में परेशान नहीं होना, क्योंकि उन बेचारों को यह नहीं पता है कि उनकी ऐसी विचारधारा क्यों है। इसी प्रकार संसार के लोगों की विचारधारायें एक-दूसरे से भिन्न हैं। क्यों सबके विचार भिन्न हैं जबकि 'आत्मदेव' तो



सबमें एक है? यह 'मन' का खेल है जिसे संसार के लोग कभी भी समझ नहीं पायेंगे।

चौरासी भोगने के बाद 'आत्मा' को मुक्ति प्राप्त करने के लिए मानव-शरीर मिलता है। यह आपका 'पहला-जन्म' नहीं है, आप सबके अनंत जन्म हो चुके हैं। अनंत बार आप सबने चौरासी का चक्कर काटा है, अनंत बार मनुष्य-तन प्राप्त किया है। अनंत बार 'अस्थायी मुक्ति' को भी प्राप्त किया है; अनंतबार स्वर्ग आदि लोकों का सुख भी भोगा है। अनंत बार नरक की यातनायें भी भोगी हैं। लेकिन आप सब 'मन' की सीमा और बन्धनों से कभी भी मुक्त नहीं हो पाये। 'मन' ने आपको 'तीन-लोक' के दायरे से बाहर नहीं निकलने दिया।

जैसा व्यवहार जीवन में आप सब अपने प्रति चाहते हैं वैसा ही व्यवहार आप दूसरों से करें। हमेशा याद रखना, आप सब जिस 'मृत्यु लोक' में रह रहे हैं, यह 'कर्म भूमि' है। जैसा बीज बोयेंगे, वैसा ही फल पायेंगे। ध्यान रहे, किसी भी जीव को मन-वचन-कर्म से पीड़ा नहीं देना, सबसे आत्मीय व्यवहार करना, जहाँ गलती हो वहाँ क्षमा माँग लेना। गलती से भी अपनी ताकत/अक्ल/दौलत/रुतबे का घमण्ड नहीं दिखाना।

आधा/अधूरा ज्ञान हर उस व्यक्ति के लिए अत्यंत घातक है जो उन्नति के मार्ग पर चल रहा है, फिर चाहे वो भौतिक उन्नति हो या आध्यात्मिक उन्नति। जिस भी व्यक्ति के जीवन में आधा/अधूरा ज्ञान है, समझ लेना वो व्यक्ति अहंकार की दलदल में डूबा हुआ है। ऐसा व्यक्ति अहंकारवश स्वयं को परम ज्ञानी मानकर जीवन भर के लिये अपनी उन्नति के हरेक द्वार को अपने ही हाथों से ताला लगाकर बंद कर देता है।

इस तीन लोक में सभी माया के ईष्ट हैं, सभी का रिश्ता 'मन' के साथ है, 'आत्मा' के साथ नहीं। एक पूर्ण सद्गुरु ही केवल 'आत्मा' के सच्चे ईष्ट हैं जो स्वयं 'आत्मा' को 'कालपुरुष' के दायरे से अपना सच्चा विदेह 'नाम' देकर हमेशा के लिए मुक्त करवा लेते हैं। सद्गुरु के अलावा दूसरा कोई भी ईष्ट 'आत्मा' को कालपुरुष के चंगुल से मुक्त करवाने की ताकत

नहीं रखता है क्योंकि सत्गुरु के अलावा और किसी ईष्ट की पहुँच सीधी 'आत्मा' तक नहीं है, सभी ईष्ट 'मन' के पुजारी हैं, 'मन' की मार और पकड़ के अन्दर आते हैं।

जिस व्यक्ति के हृदय में 'नाम' नहीं है, वो व्यक्ति एक 'ज़िंदा लाश' के समान है जिसे न तो 'स्वाँस' की कोई खबर है, न 'मन' की कोई खबर है, न 'माया' की कोई खबर है, न आत्मा की कोई खबर है, न बँधनों की कोई खबर है। ऐसे व्यक्ति को न 'जीवन' की कोई खबर है, न मृत्यु की कोई खबर है, न 'धर्म' की कोई खबर है, न 'कर्म' की कोई खबर है। 'नाम' से रहित व्यक्ति को न तो पूर्ण 'गुरु' की कोई खबर है और न 'परमपुरुष' की कोई खबर है। साहिब कह रहे हैं कि ऐसा बेसुध जीव 'शरीर' बनकर ही पैदा होता है और अंत में 'शरीर' बना हुआ ही मर जाता है। कह रहे हैं -

सत्यनाम की सेवा धारा। सुमिरण ध्यान नाम निरधारा॥  
 सत्गुरु वर्णन प्रीति सुहाये। मूरति को नहिं शीष नवाये॥  
 तीरथ व्रत मूरति भ्रमजाला। सत्य भक्ति गहिये सतचाला॥  
 निर्गुण सर्गुण को तजि दीजै। सत्यपुरुष की भक्ति गहियै॥  
 संत गुरु की सेवा धारे। तन मन धन अर्पण करि डारे॥  
 कोटिन तीर्थ गुरु के चरणा। संचय सोच दोष सब हरना॥  
 दुखी दीन देखत दुख लागा। परमारथ पथ तन धन त्यागा॥  
 गृही साधु दोउ एक समाना। परम दयाल दोहू को बाना॥  
 मद्य माँस भष जग में जोई। महामलीन जानिये सोई॥  
 परम दया सब जिव पर पालो। अद्यौ दूष्टि मारग में चालौ॥  
 सिंहा कर्म जेते जग माहीं। ताके कबहुँ निकट न जाहीं॥  
 सब जीवन की कर रखवाली। जीव घात कहूँ बात न चाली॥

सद्गुरु साँचे शब्द हैं, काया के गुणवान॥

जीवन मुक्त शब्दहि मिले, महापुरुष के ज्ञान॥

साहिब ने माँसाहार और हिंसा को महापाप कहा, हिंसक पशुओं के साथ तुलना करते हुए मनुष्यों को समझाया - आपके बच्चे को कोई काटकर

खा जाये तो आपको कैसा लगेगा? आपके दिल में ऐसे व्यक्ति के प्रति दया होगी क्या, जो आपकी आँखों के सामने आपके बच्चे को काटकर खाये? जब सभी जीवों में समान रूप से 'परमपुरुष' का ही 'अंश' है तो फिर किसी जीव की हत्या करके, उसे काटकर खा रहे हो, तो क्या 'परमपुरुष' की दया के पात्र बन पाओगे? कभी भी नहीं। इस सृष्टि में **चौरासी लाख योनियाँ** हैं जिन्हें दो प्रकार की श्रेणियों में बाँटा गया है – माँसाहारी और शाकाहारी। मनुष्य 'शाकाहारी' श्रेणी का जीव है जिसके शरीर की संरचना कुदरत ने केवल सब्जी, फल, अनाज आदि का सेवन करने के लिए की है; माँस, मछली, अण्डा आदि खाने के लिए नहीं। हरेक श्रेणी में रहने वाला जीव कुदरत के नियम अनुसार अपना जीवन-बसर करता है। मनुष्य इकलौता ऐसा जीव है जो कुदरत के सभी नियमों का उल्लंघन करता है। कुदरत द्वारा निर्धारित किये गए मापदण्डों के विरुद्ध चलता है। मनुष्य द्वारा माँस, मछली, अण्डा आदि का सेवन करना भक्ति में वर्जित है, इसे 'महाँपाप' की श्रेणी में रखा गया है। जो मनुष्य माँस का सेवन करता है, वह प्रत्यक्ष रूप से 'राक्षस' है। ऐसे व्यक्ति की संगत करने की भी मनाही है जो माँस का सेवन करता है, क्योंकि ऐसे व्यक्ति की संगत करने से भक्ति में बहुत बड़ी हानि होती है। कह रहे हैं –

माँसाहारी मानवा प्रत्यक्ष राक्षस जान।  
इनकी संगति न करो होये भक्ति में हानि।।

**सार शब्द बिना मुक्ति नहीं**

काल-निरञ्जन ही शरीर के सब कर्मों में उलझाये रखने के लिए पाप-पुण्य करवा रहा है। काल ने ही जगत में ऐसे धर्म-स्थान बनाये जहाँ मनुष्य हिंसा का विचार किये बिना ही जीव हत्या कर पूजा और भोग कर रहा है। एकमात्र 'सद्गुरु' शरण में आकर 'नाम' प्राप्त होने पर मनुष्य को कालपुरुष द्वारा 'आत्मा' के बँधन का यह जाल समझ में आता है। वाणी है –

अनेक ठाव जिव माथ नवावै। आप न चीन्हे धोखा पावै॥  
 यह सब देख निरञ्जन आसा। सत्यनाम बिनु मिटे न फाँसा॥  
 जैसे नट मकर्ट दुख देई। नाना नाच नचावन लेई॥  
 यहि विधि यह मन जीव नचावै। कर्म भर्म फँद दृढावै॥  
 सुनु धर्मनि मन के व्यवहारा। मन को चीन्ह गहे पद सारा॥  
 या तन भीतर और न कोई। मन अरु जीव रहे घर दोई॥  
 पाँच-पच्चीस तीन मन झेला। ये सब आदि निरञ्जन चेला॥  
 पुरुष अंश जिव आन समाना। सुधि भूलि निजघर सहिदाना॥  
 इन सब मिलि के जीवहि घेरा। बिन परिचय जिव यम का चेरा॥  
 रक्षाक कला दिखाय, अनन्त काल भक्षण करे॥  
 पीछे जिव पछताय, जबहि काल के मुख परे॥  
 अड़सठ तीरथ ब्रह्मा थापा। अकरम करम पुण्य औ पापा॥  
 बारह राशि नखत सत्ताइस। सात वार पन्द्रह तिथि लाइस॥  
 चारों युग तब बाँधे तानी। घड़ी दण्ड स्वासा अनुमानी॥  
 कार्तिक माघ पुण्य कहि दीन्हा। यम बाजी कोई बिरले चीन्हा॥  
 तीरथ धाम की बाँधि महातम। तजे न भ्रम न चीन्हे आतम॥  
 पाप पुण्य में सबै फंदावा। यहि विधि जीव सबै उरझावा॥  
 सत्यशब्द बिन बाँचे नाहीं। सार शब्द बिन यम मुख जाहीं॥

मन को दो चीजों से सख्त नफ़रत है – ‘एकाग्रता’ और ‘एकता’ मन को इन दोनों से क्यों नफ़रत हैं? मन यह अच्छी तरह जानता है कि एकाग्रता और एकता के भेद/बल/महत्व को समझ गए, जान गए तो उसकी हुकूमत समाप्त हो जायेगी। मन, इसलिये संसार के लोगों को जीवन भर न तो पूर्ण रूप से एकाग्र होने देता है, और न ही लोगों में पूर्ण एकता बनने देता है। मन बड़ी ही चालाकी के साथ हरेक व्यक्ति की खोपड़ी पर सवार होकर उसकी एकाग्रता और एकता को भंग कर देता है ताकि व्यक्ति हमेशा उसके अधीन रहे और उसके हर हुक्म की ‘पालना’ करता रहे। ‘मन’ ने इसी कारण से संसार में नाना धर्म, नाना जातियाँ, नाना भक्ति पद्धतियाँ, नाना कर्म, नाना पंथ, नाना गुरु, नाना मुक्तियाँ, नाना विचार-धारायें सृजित की हुई हैं ताकि संसार का कोई भी जीव पूर्ण रूप से ‘सत्य’ अर्थात् ‘परमपुरुष’

की तरफ़ 'एकाग्र' न हो सके और एकजुट होकर उस 'सत्य' की उपासना न कर सके जिसकी प्राप्ति स्वयं 'मन' नहीं कर सकता क्योंकि मन स्वयं 'झूठ' में अर्थात् 'माया' में रमा हुआ है। निरञ्जन 'मन' तीन-लोकों में 17-चौकड़ी असंख्य युगों तक रहने के लिए परमपुरुष द्वारा श्रापित है। यह अवधि मानव बुद्धि की कल्पना/गणना से परे है।

'सत्य-भक्ति' अत्यंत बारीक है जिसकी प्राप्ति जीव द्वारा 'शीश' [मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार रूपी मैं/खुदी] सौंपे बिना नहीं हो सकती। जिस भी जीव को काल और 'माया' के बँधनों से हमेशा के लिए मुक्त होना है, उसे अपना शीश अर्थात् अपनी मैं अहमं/अहंकार को अपने ही हाथों से काटकर, अपने ही पैरों तले रौंद कर; सत्गुरु की शरण में आना पड़ेगा, तभी भवसागर से पार हो पायेगा।

शीश उतारे भुईं धरे तापे राखे पाँव।  
कहे कबीर कोई जौहरी ऐसा होय तो आव॥  
भक्ति साहिब की बहुत बारीक है, शीश सौंपे बिना पाई नाहिं।  
नाचना गाना ताल का पीटना, रांडिया खेल है भक्ति नाहिं॥

कबीर साहिब के दोहे/रमैनी/शब्द/साखी आदि को सुनने-बोलने-गाने-पढ़ने-रटने से 'आत्मज्ञान' नहीं होने वाला। जब तक उनकी वाणी को अपने जीवन में पूर्ण रूप से 'आत्मसात' नहीं करोगे तब तक जीवन में उन सबको कोई भी लाभ नहीं मिल पायेगा। सिर्फ बाहरी रटन विद्या और कहने मात्र से काम नहीं बनने वाला, पूर्ण रूप से अमल भी करना पड़ेगा। भक्ति और मुक्ति 'मनोरंजन' में लिप्त है, इसलिये संसार 'भक्ति' और 'मुक्ति' के रहस्य को नहीं जानता है।

भक्ति में झूठ-पाप-छल-कपट-हिंसा-माँसाहार-जुआ-नशा आदि के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। जो मनुष्य ऊपरलिखित विषय वस्तु में से किसी एक वस्तु का भी संग कर रहा है तो वह मनुष्य 'भक्ति' से कहीं बहुत दूर हैं।

मैं अपने शिष्यों से सात-नियमों का कठोरता से पालन कराता हूँ और उन्हें पालन करने की शक्ति देता हूँ। हमेशा सत्य बोलना, किसी प्रकार का नशा नहीं करना, शाकाहारी रहना, चरित्रवान रहना, अपनी मेहनत की कमाई खाना, चोरी नहीं करना (मन-वचन-कर्म से सावधान रहकर) और

किसी प्रकार का जुआ नहीं खेलना। इसलिये मेरे सब शिष्य दुनिया से निराले होकर साधु हैं। 'नाम' दान देने के साथ ही शरीर छुड़वा सकता हूँ, उसी पल 'आत्मा' को 'अमरलोक' पहुँचा सकता हूँ। यह बात मैं घमण्ड से नहीं बल्कि भरोसे के साथ बोल रहा हूँ। मुझे ऐसा करने में एक पल का समय भी नहीं लगेगा। ऐसा इसलिये नहीं करता हूँ कि यह 'मन' का संसार है, यहाँ पर मन ने सभी को शरीर के मोह में बाँधा हुआ है। आत्मा स्वयं को शरीर मान रही है। आत्मा को शरीर से बेहद प्रेम है। संसार में सभी शरीर से प्रेम कर रहे हैं; 'शरीर' बनकर जी रहे हैं। अज्ञान के कारण शरीर मिटने पर रोते हैं, दुःखी होते हैं क्योंकि स्वयं का बोध नहीं है। इस संसार में 'माँस और हड्डियों' की पूजा होती है। अगर 'नाम' देते ही 'आत्मा' को शरीर के बँधन से मुक्त कर दिया तो आप ही के परिवार वाले, रिश्तेदार मुझे 'हत्यारा' कहेंगे, महात्मा नहीं, क्यों कि सभी 'मन' के गुलाम हैं, काल के दायरे में बँधे हैं। डर के मारे फिर कोई दूसरा जीव मेरे पास आएगा ही नहीं 'नाम' लेने के लिए, वो सोचेगा कि गुरुजी तो नाम देने के साथ ही मार डालते हैं, भागो रे भागो।

सद्गुरु की 'आत्मा' स्वयं 'परमपुरुष' में समा चुकी होती है इसलिये 'सद्गुरु' के पास 'पारस सुरति' (परमपुरुष की सुरति) होती है जिसके स्पर्श द्वारा सद्गुरु किसी भी जीवात्मा को उसकी मूल-चेतना प्रदान करके 'परममोक्ष' दिलवा देते हैं, अपनी कृपा द्वारा। सद्गुरु कभी भी किसी जीव को शब्द कमाई/सुरति शब्द अभ्यास करने के लिए नहीं कहते। सद्गुरु का ध्यान ही 'परममोक्ष' का द्वार है क्योंकि वह स्वयं 'परमपुरुष' का तद्रूप हो चुके होते हैं। साहिब वाणी में कह रहे हैं—

गुरु नाम हम आप कहाया। गुरु पुरुष नहिं भिन्न बताया॥  
 अस जिव काल वस होय रहई। दृढ प्रतीत के गुरु नहिं गहई॥  
 सब मूरति परतीत न आवै। शून्य ध्यान धोखहु मन लावै॥  
 जो निश्चय होय गुरु प्रन धरहिं। मुक्ति होय टारे नहिं टरहीं॥



# सार-शब्द परमपुरुष का दिया अकह 'नाम' है

नहीं बोल भाषा में आवै शब्द सैन सो जाना॥  
आशा बन्धते प्रकट कीनो जो जैसे अनुमाना॥  
'सार शब्द दियो है पुरुष ने' आप तो गुप्त रहाना॥  
जिहि पारसते पुरुष दृढ़ाने करि चौका बन्धाना॥  
कहे कबीर ये अगम गुरु है, सही छाप परवाना॥  
...सो गुरु खोज सो सन्त सुजाना॥

## शरणागति फर्जी न हो

पाँच शब्द - 'ज्योति निरञ्जन' - 'ओंकार' - 'सोहंग' - 'सत्' - 'रंकार' की पहुँच 'परमपुरुष' तक नहीं है। ये पाँच शब्द और इनकी 'पाँच मुद्रायें' योगमत कहलाते हैं, निर्गुण-भक्ति कहलाते हैं; संत-मत नहीं। इन पाँच शब्दों द्वारा कोई भी जीव 'अमरलोक' नहीं पहुँच सकता, मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।

जिस शब्द की बात कबीर साहिब ने कही है वो 'विदेह शब्द' है, लिखने-पढ़ने-बोलने में नहीं आता 'अकह' है। इस सच्चे 'नाम' की प्राप्ति केवल एक पूर्ण गुरु अर्थात् 'सद्गुरु' द्वारा ही हो सकती है।

एक संत-सद्गुरु की वाणी कानों से नहीं, 'सुरति' से सुनी जाती है। जैसे जिभ्या भोज-पदार्थों को छानने का काम करती है, ऐसे ही संत-सद्गुरु के मुखारविंद से निकले हुए शब्दों में सार-तत्त्व को समझ लेना। सद्गुरु के पास भक्ति रहस्य का बहुत बारीक अति-सूक्ष्म तत्त्व है जिसे इस मायावी दुनिया में विरले जन ही जान और समझ पाते हैं। सद्गुरु से सत्य-भक्ति का गुप्त-भेद पाकर ही 'सुरति' एकाग्र होने पर 'आत्मज्ञान' की पहचान

होगी। मन अति सूक्ष्म रूप में हमारी 'आत्मा' के साथ रहता है इसलिये इस तीन लोक में कहीं भी आत्मा का मूल यथार्थ ज्ञान नहीं है। फिर आत्मा का यथार्थ है कहाँ?

...साहिब ने इस परा-रहस्य को उजागर करके अपनी वाणी में समझाया कि 'आत्मा' का मूल यथार्थ ज्ञान केवल 'अमरलोक' में है क्योंकि वहाँ पर मन का कोई अस्तित्व नहीं है। आत्मा वहाँ पर अपने मूल 'हँस' स्वरूप में रहती है। अमरलोक में 'मन' नहीं है, माया नहीं है, जन्म और मृत्यु नहीं है, सुख-दुःख नहीं है, बाधाएँ नहीं हैं व्याधियाँ नहीं हैं; तू-मैं नहीं है। जब तक आपकी आत्मा अपने इस मूल देश अर्थात् 'अमरलोक' की प्राप्ति नहीं कर लेगी, जन्म-मरण के क्रम से इसका पिण्डा नहीं छूट सकता। बार-बार के आवागमन से आपको 'मुक्ति' नहीं मिल सकती।

सत्गुरु 'नाम' की ताक़त के बिना इस ब्रह्माण्ड में कोई भी जीव 'मन' पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता, मन की मार से नहीं बच सकता, चाहे कितनी भी कोशिश कर ले। जब तक मन के अधीन रहोगे, माता के गर्भ में उल्टे लटकने का असहनीय कष्ट बार-बार सहना पड़ेगा। शरीर का मोह छोड़कर सत्गुरु की शरण प्राप्त करके हमेशा के लिए जीवन मुक्त हो जाओ।

एक 'माँ' जब बालक को जन्म देती है तो उसी का रूप हो जाती है, उसी में रम जाती है। बालक पूरी तरह से अपनी 'माँ' के आगे शरणागत होता है, वो जानता है कि मेरी पूरी देखभाल 'माँ' ही करेगी, जब भी पुकारूँगा तो 'माँ' फौरन मेरे पास आ जायेगी। घर में रहते हुए, घर के सारे काम करते हुए; माँ का मूल ध्यान बालक में ही रहता है। जीव 'नामदान' के समय पूरी तरह से 'सत्गुरु' की शरणागत हो जाता है सच में अपना तन-मन-धन सत्गुरु को सौंप देता है; ऐसे जीव का 'कर्ता' फिर स्वयं सत्गुरु हो जाता है, पूरा जीवन उस जीव की देखभाल, उसकी रक्षा 'सद्गुरु' ही करता है; क्योंकि सद्गुरु जानता है कि 'जीव' पूर्ण रूप से उसके शरणागति है। जो भी जिसकी शरणागति होता है, वो उसकी रक्षा करता है। सद्गुरु



का मूल ध्यान ऐसे 'जीव' पर हमेशा ही बना रहता है, चाहे जीव संसार के किसी भी कोने में क्यों न हो। शरणागति कोई मामूली चीज़ नहीं है। ध्यान रहे शरणागति फर्जी न हो, केवल दिखावे के लिए न हो, दिल से हो। अगर शरणागति फर्जी होगी, तो फिर सद्गुरु से 'नाम' भी फर्जी ही प्राप्त होगा। साहिब ने वाणी में समझाया कि एक शरणागत का अनुराग सद्गुरु के प्रति कैसा हो-

जैसे मृगा नाद सुनि धावै। मगन होय व्याघा ढिंग आवै॥  
चित कछु शंक न आवै ताहि। देत सीस सो नाहि डराही॥  
सुनि सुनि नाद सीस तिन दीन्हा। ऐसे अनुरागी के चीन्हा॥  
औ पतंगा जैसो भाऊ। ऐसे अनुरागी उर आऊ॥  
नारी सुत को मोह न आने। जीवन जनम सपन करि जाने॥  
जैसे ऊख किसान बनावे। रती रती कर देह कटावे॥  
कोल्हू महँ पुनि आप पिरावे। पुनि कड़ाह में आप ऊँटावे॥  
जिन तनु दाहे गुड़ तब होई। बहुरि ताव दे खाँड विलाई॥  
ताहू माहिं ताव पुनि दीन्हा। चीनी तबै कहावन लीन्हा॥  
चीनी होय बहुरि तन जारा। ताते मिसरी ह्वै अनुसारा॥  
मिसरीते जब कंद कहावा। कहे कबीर सबके मन भावा॥  
यही विधिते जो शिष सहई। गुरु कृपा सहजे भव तरई॥

दुनिया की माया चाही तो अंत में पछताना ही पड़ेगा। सच्चे गुरु भक्तों को कोई भी चाहत नहीं होती, इसलिये उन्हें कोई चिन्ता भी नहीं होती, उल्टे उनकी चिन्ता सद्गुरु को लगी रहती है कि उन्हें क्या चाहिये। माता-पिता सब बच्चों का ख्याल रखते हैं। जिसे जो चाहिये माँग लेता है; पर जो नहीं माँगता क्या उसे कुछ नहीं मिलता? उसे बहुत कुछ मिल जाता है, वो प्यार मिल जाता है, जो...माँगने वाले को नहीं मिल पाता। माँगने वालों को कभी इच्छित वस्तु नहीं भी मिलती, पर नहीं माँगने वाले की ओर माता-पिता का ध्यान रहता है कि इसे क्या चाहिये। वे चिन्ता में रहते हैं कि कहीं इसे कोई कमी तो नहीं, पर ऐसा नहीं है कि माँगने वाले को सद्गुरु से कुछ

नहीं मिलता। सद्गुरु पल भर में तीन-लोक की सम्पदा दान में देते हैं; पर यदि कुछ नहीं माँगा, कुछ नहीं चाहा तो सद्गुरु अपने समान कर लेते हैं।

निरञ्जन ने इस तीन-लोक में किसी को भी 'परमपुरुष' के मूलस्वरूप का, मूल ठिकाने का भेद ही नहीं दिया। अगर सच में उस 'गुप्त घर' का ठिकाना जानना चाहते हो, उसे सच में पाना चाहते हो, तो अपनी 'मैं' को मिटाकर सच्चे 'सद्गुरु' की शरण प्राप्त करनी होगी। क्योंकि सद्गुरु ही तुम्हें उस 'गुप्त घर' का भेद लखाकर तुम्हारी 'आत्मा' को वहाँ तक पहुँचा सकते हैं। जितने भी साधन तुमने 'परमात्मा' के नाम के अपना रखे हैं - वे सब झूठे हैं, 'मन' द्वारा प्रेरित हैं।

मैंने अपने 'सत्य भक्तों' का मन और माया का नशा सिर से उतार दिया; संसार की आसक्ति खत्म कर दी। मन पर सत्य 'नाम' की नकेल लगा दी। 'आत्मा' को चेतन कर दिया; आत्मा 'मन' की तरंगों को पढ़ने लग गई। 'सुरति' को मन और माया के दायरे से निकाल कर 'साहिब की सुरति' के साथ जोड़ दिया। मन की वृत्तियों काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार को एक सीमित दायरे में बाँध दिया। यह सब काम 'परमपुरुष' की कृपा से हुआ। इसमें शिष्य का एक पैसे का भी सहयोग नहीं है, न ही सुमिरन का और न ही किसी साधना का; बस मुझमें (सद्गुरु) समर्पण-शरणागति से हुआ। 'नामी' को होने वाली प्राप्तिओं के बारे में साहिब की वाणी है -

सार नाम सद्गुरु सो पावे। नाम डोर गहिलोक सिधावे॥  
 धर्मराय ताको सिरनावे। जो हँसा निःतत्त्व समावे॥  
 सार शब्द विदेह स्वरूपा। निःअक्षरवहि रूप अनूपा॥  
 तत्त्व प्रकृति भाव सब देहा। सार शब्द निःतत्त्व विदेहा॥  
 कहन सुनन को शब्द चौधारा। सार शब्द सों जीव उबारा॥  
 बिन रसना के जाई समाई। तासों काल रहे मुरझाई॥  
 सूक्ष्म सहज पंथ है पूरा। तापर चढ़ो रहे जन सूरा॥  
 नाहिं वहँ शब्द न सुमरा जापा। पूरन वस्तु काल दिख दापा॥

हँस भार तुम्हरे शिर दीना । तुमको कहीं शब्द को चीन्हा ॥  
 पदम अनन्त पँखुरी जाने । अजपा जाप डोर सो ताने ॥  
 सूक्ष्म द्वार तहाँ तब परसे । अगम अगोचर सत्पथ परसे ॥  
 अन्तर शून्य महि होय प्रकाशा । तहँवाँ आदि पुरुष को बासा ॥  
 ताहि चीन्ह हँस तहँ जाई । आदि सुरति तहँ लै पहुँचाई ॥

सद्गुरु भक्ति का मतलब ही यह है कि सद्गुरु की आज्ञा अनुसार चलता रहे । जिन बातों के लिए मना किया, वो कभी न करे । जो करने को कहा वो मरते दम तक करता रहे । धन से सद्गुरु की सेवा करना भी अच्छी बात है, तन से सेवा करना बड़ी बात है, पर मन से सद्गुरु की सेवा करना बहुत कठिन है । यदि अपनी 'मैं' बीच में आ गई तो मन से सद्गुरु-भक्ति नहीं हो पायेगी । अपनी 'मैं' को हटा देना बहुत कठिन कार्य है, इसलिये मन से सद्गुरु की सेवा कोई विरला ही कर पाता है; इसमें सद्गुरु को परमपुरुष करके मानना है । यह भरोसा दिल में हमेशा रखना है । भरोसे की नीव पर ही सद्गुरु-भक्ति का महल खड़ा हो पायेगा । मन का कोई तर्क बीच में नहीं आने देना है, क्योंकि मन किसी भी तरह से सद्गुरु की सेवा नहीं करने देना चाहता । सद्गुरु की सेवा मात्र से ही समस्त ब्रह्माण्ड की पूजा हो जाती है ।

सद्गुरु के साथ रिश्ता जुड़ते ही शिष्य की 'आत्मा' जाग जाती है जो कि अनादिकाल से मन और माया के रंग में रंगी हुई है । सद्गुरु की 'पारस सुरति' का स्पर्श मिलते ही शिष्य की 'सुरति' भी चेतन हो जाती है और ठीक-ठीक 'मन' की तरंगों को पढ़ने लग जाती है जो हर पल सुरति को भ्रमित कर रही हैं । सद्गुरु का ध्यान करने से शिष्य की 'आत्मा' के ऊपर से मन और माया की अज्ञान रूपी पर्ते खुद-ब-खुद छटने लग जाती हैं और ध्यान के द्वारा ही शिष्य के अन्दर सद्गुरु की 'आध्यात्मिक शक्तियों' का भी प्रवेश होने लग जाता है । यह पूरा काम बड़ी सहजता के साथ होता चला जाता है । यदि शिष्य ने कहीं भी सद्गुरु के साथ छल-कपट किया तो फिर उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होगा । सद्गुरु तो हर पल 'रूहानियत' देना चाहते

हैं, बिना रुके; पर कोई सहजता से लेने वाला भी तो हो। साहिब अपनी वाणी में शिष्य को एक बात समझाकर कह रहे हैं कि अगर तुमसे दुनिया भी रूठ जाये तो चिंता नहीं करना। परमात्मा भी रूठ जाए तो भी घबराना नहीं, लेकिन ध्यान रहे कभी सद्गुरु को रूठने न देना, क्योंकि अगर सद्गुरु रूठ गया तो फिर तुम्हारी आत्मा को 'काल' के शिंकजे से स्वयं 'परमात्मा' भी नहीं निकाल पायेगा।

कबीर हरि के रूठते गुरु की शरणे जाये।

कहे कबीर गुरु रूठते हरि न होत सहाय॥

### आत्मा ( सुरति ) को जगाना क्यों पड़ रहा है?

आपको अगर बेवजह जेल में बंद कर दिया जाय तो आप पक्का विरोध करेंगे, बाहर निकलने के उपाय तलाश करेंगे, बाहर निकलने की भरपूर कोशिश करेंगे। 'आत्मा' को भी बेवजह 'मन' ने शरीर रूपी जेल में बंद कर रखा है, लेकिन आत्मा बिल्कुल भी मन का विरोध नहीं कर रही है, बाहर निकलने के उपाय नहीं तलाश रही है। क्यों? यही है संसार का इकलौता सबसे बड़ा 'कौतुक' (Wonder) कि 'आत्मा' अनादिकाल से शरीर रूपी जेल में बंद होने के बावजूद, छुटने का प्रयास नहीं कर रही है।

मनुष्य का संचालन क्रूर शैतानी ताकतें कर रही हैं, परमात्मा नहीं। ये शैतानी ताकतें मनुष्य के भीतर ही रहती हैं जो दिखाई नहीं देतीं लेकिन अपना काम बाखूबी निभाती चलती हैं। मनुष्य अपने अन्दर निवास कर रही शैतानी ताकतों से बिल्कुल बेखबर है। जब तक मनुष्य इन शैतानी ताकतों (काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार-मन-बुद्धि-चित्त) के आधीन है कभी भी सुखी नहीं हो सकता, निर्मल नहीं हो सकता, अच्छा नहीं हो सकता। इन शैतानी ताकतों को केवल 'मूल सुरति' [ध्यान की शुद्ध पराकाष्ठा] द्वारा ही जाना जा सकता है।

साहिब ने केवल 'सुरति' को जगाने की बात कही है आपने भक्ति-पदों में; सात-चक्रों अथवा शरीर की 'अति सूक्ष्म कोशिकाओं' को जगाने

के लिए नहीं कहा। क्योंकि शरीर स्वयं 'काल निरञ्जन' की काया है। शरीर में दिव्य शक्तियों का भण्डार है जो काल की ही मायावी शक्तियाँ हैं, जिनकी रचना केवल 'आत्मा' को भ्रमित करने, उलझाने के लिए ही की गई है। त्रिकाल में सभी ने शरीर की इन्हीं मायावी शक्तियों (मन द्वारा संचालित) को प्राप्त किया और संसार में इनका प्रदर्शन किया। इन्हीं मायावी शक्तियों ने सभी को भ्रमित कर दिया और कोई भी जीव 'सुरति' के रहस्य को ठीक से नहीं समझ पाया। मन-माया के जाल को नहीं देख/समझ पाया। सभी 'शरीरियत' में ही उलझे रह गए और अंत में सभी की 'आत्मा' को माया ने ठग लिया। 'नाम' के बिना सभी जीवों की 'सुरति' अँधी है; इसलिये कोई भी जीव मन-माया के जाल को नहीं देख/समझ पा रहा है।

'हँस' स्वरूप 'आत्मा' मन में इस प्रकार समाई है जैसे दूध में पानी। कोई कितनी भी चेष्टा कर ले कि दूध और पानी को किसी साधना द्वारा अलग कर दूँ, कभी नहीं कर पायेगा। सद्गुरु कृपा के बिना आत्मा कभी भी खुद को 'मन' से अलग नहीं कर सकती।

निरञ्जन ने कहा है कि 'आत्मा' जान ही नहीं सकेगी कि वो कौन है? सद्गुरु 'शब्द' भी कोई नहीं सुनेगा। जब कलियुग में सद्गुरु कबीर साहिब जीवों को चेताने आए तो धर्मराये निरञ्जन ने कहा -

कहे धर्म कस मोहिं दुखावहु। भच्छ हमार लोक पहुँचावहु।  
तीनों युग गवने संसारा। भवसागर तुम मोर उजारा॥  
और बँधु जो आवत कोई। छिनमहँ ताकहँ खाँव बिलोई॥  
तुमते कछु न मोर बसाई। तुम्हरे बल हँसा घर जाई॥  
अब तुम फेर जाहु जग माहीं। शब्द तुम्हार सुनै कोउ नाहीं॥  
करम भरम मम असकै ठाटा। ताते कोई न पावै बाटा॥  
घर घर भरम भूत उपजावा। धौखा दे दे जीव नचावा॥  
मद्य माँस खावै नर लोई। सर्व माँस प्रिय नरको होई॥  
आपन पंथ मैं कीन परगासा। माँस मद्य सब मानुष ग्रासा॥

चंडी जोगिन भूत पुजाओं। यही भ्रम जग जहै मड़ाओं॥  
 बाँधि बहु फंदहिं फन्द फन्दाओं। अंत काल कर सुधि बिसराओं॥  
 भ्रम भूत होय सब कहँ लागे। तोहि चीन्हें ताकहँ भ्रम भागे॥  
 तुम्हरी भक्ति कठिन होय भाई। कोई न मानिहैं कहाँ बुझाई॥

हँस 'आत्मा' को जगाने/चेताने सद्गुरु साहिब हर युग में मृत्युलोक आते हैं और हर बार निरञ्जन उन्हें आने से रोकता है। द्वापर युग के बाद जब कलियुग में साहिब आए तो काल निरञ्जन ने अपने लोक में रोका और कहा तुम तीनों युगों में मेरे जीव संसार में गए और मेरे भवसागर को उजाड़ा। तुम्हारे बल पर 'आत्मा' हँस होकर निज घर जाती है तुम पर मेरा कोई जोर नहीं चलता है। अब तुम फिर मेरे जगत में जा रहे हो। अब मेरे जगत का कोई जीव तुम्हारा शब्द नहीं सुनेगा। 'मैं' (कालपुरुष) इतने कर्म और भ्रम के असीमित ठाटों (सुविधाओं) में जीवों को उलझा दूँगा कि उन्हें मुक्ति का मार्ग सूझेगा ही नहीं। सबको माँस, मदिरा, ही प्रिय भोजन लगेगा सब मनुष्य वो ही खायेंगे। मैं अनेकों पंथों का विस्तार कर दूँगा, चण्डी, जोगिन और भूत पूजाओं के भ्रम में जगत को उलझा दूँगा। 'आत्मा' को अनेक प्रकार के माया-शरीर और इच्छाओं के फन्दों में बाँध दूँगा कि अंत समय सुरति में संसार ही रहेगा, मुक्ति की बात नहीं। हे कबीर! तुम्हारी भक्ति कठिन है, कोई नहीं मानेगा, फिर भी जो तुम्हें (सद्गुरु) पहचान लेगा उस जीव के सब भ्रम दूर हो जायेंगे। तब ज्ञानी साहिब ने काल निरञ्जन छल दूर करने उससे कहा -

पुरुष मोहि जो आज्ञा देही। तो सब होयें नाम सनेही॥  
 ताते सहजहिं जीव चेताऊँ। अंकुरी जीव सकल मुक्ताऊँ॥  
 कोटि फन्द जो तुम रचि राखा। वेद शास्त्र निज महिमा भाखा॥  
 प्रकट कला जो धरि जग जाऊँ। तो सब जीवन को मुक्ताओं॥  
 जो अस करौं वचन तब डोलै। वचन अखण्ड अडोल अमोलै॥  
 अंकुरी जीव सकल मुक्ताओं। फन्दा काटि लोक ले जाओं॥  
 काटि भ्रम जो देहौं ताही। भ्रम तुम्हार मानिहैं नाहीं॥

कालनिरञ्जन को 17 चौकड़ी असंख्य युगों तक तीन-लोक सृष्टि में जीवों

पर राज करने का श्राप परमपुरुष ने दिया है। 16 शब्द पुत्रों में 5वाँ शब्द पुत्र निरञ्जन अपने छल और क्रूरता के कारण अमरलोक से निकाला गया। सद्गुरु परमपुरुष का तंदरूप है, शब्द पुत्र नहीं, जिन्हें जीवों को कालपुरुष के भ्रमजाल से परमपुरुष की सुरति का सार-शब्द देकर मुक्त कराने के लिए हर युग में भेजा गया है। इसी कारण कलियुग में भी जब कालपुरुष ने अपना छल और क्रूरता दिखाई तो सद्गुरु कबीर ने कहा – हे धर्मराज काल! यदि मुझे परमपुरुष आज्ञा देते तो सब जीवों को ‘**नाम**’ का प्रेमी बना देता। अब ऐसा करूँगा तो ‘**पुरुष**’ का अखण्ड वचन भंग हो जावेगा। वो वचन तो अटल और अनमोल है। हे काल! तुमने वेद-शास्त्रों में खुद की महिमा का बखान करके तरह-तरह के फन्दों में जीवों को उलझाया है। मैं सभी अँकुरी जीवों को तुम्हारे फन्दों के सब बन्धन काट कर, ले जाऊँगा। सद्गुरु शरण में आए जीव ‘**सुरति नाम**’ से तुम्हारे भ्रमों को नहीं मानेंगे। सद्गुरु सुरति से ‘**आत्मा**’ अपने निज स्वरूप को पहचान कर तुम्हारे सब भ्रमों से निकल जायेगी।

काल निरञ्जन ने सभी जीवों को ‘**मृत्यु**’ का भय देकर अपनी ‘**माया**’ में उलझाया हुआ है। मृत्यु का भय ब्रह्माण्ड के हरेक लोक-लोकान्तर में अपना ताण्डव दिखा रहा है। त्रिदेवों से लेकर एक साधारण जीव तक सभी ‘**काल**’ की पकड़ और मार के दायरे में हैं। एक सच्चा ‘**संत**’ ही काल की इस पकड़ और मार से बाहर है, क्योंकि वह अपने निजस्वरूप अर्थात् ‘**शुद्ध आत्मस्वरूप**’ में निवास करता है। ‘**सद्गुरु**’ के संतजन ही केवल उस अमरदेश की खबर रखते हैं, जहाँ काल नहीं है, शरीर-कर्म-बंधन नहीं हैं, विनाश नहीं है।

जन्म-मृत्यु रूपी महारोग से संसार के सभी प्राणी दुःख को प्राप्त हो रहे हैं। केवल ‘**सद्गुरु नाम**’ के द्वारा ही इस महारोग से छुटकारा मिल सकता है। नींद तो मौत की निशानी है, इसलिये साहिब कह रहे हैं कि उठो और जग जाओ। जो इस बात को समझता है कि उसकी पूँजी तो स्वाँस है, जो एक पल में आती है और दूसरे ही पल चली जाती है, जिसका कोई

भरोसा भी नहीं कि वापिस शरीर में आए या नहीं। जो इस बात को भलि भाँति समझता है, उसे तो 'नाम' में ही हर समय 'सुरति' लगाये रखनी चाहिए। सभी कर्मों का सार यह है कि हृदय से सद्गुरु के नाम का ही सिमरन करते रहो और किसी भी वाद-विवाद में मत पड़ो। वाद-विवाद में फँसे रहना तो मूर्ख लोगों का काम होता है। संतो को तो वाद-विवाद करने की फुर्सत ही नहीं होती क्योंकि वे हर समय 'नाम' का ही सिमरन करते रहते हैं। सद्गुरु के 'नाम' का सिमरन चाहे कोई खुशी-खुशी, हँसता-हँसता करे, चाहे गुस्से से करे, वो निष्फल नहीं जाता, अवश्य ही लाभदायक सिद्ध होता है। गुरु नानक देव जी विवाद करने वालों को जीतने के लिए वचन कह रहे हैं—

नानक हारा सो भला, जीतन दे संसार।

हारा तो हरि से मिले, जीता यम के द्वार॥

'नाम' सिमरन के सिवाय तर्क और विवाद में जीतने वाला प्रसन्न होकर भी यम के हाथों यमलोक ही जाता है। नाम के बिना जीव की 'सुरति' अँधी है। 'नाम' की प्राप्ति के बाद ही 'सुरति' देखना प्रारम्भ करती है। 'नाम' की रोशनी में सभी मत्सर [दुश्मन : मन-बुद्धि-चित्त-काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार] जो घट में निवास कर रहे हैं; दिखने लग जाते हैं, समझ में आने लग जाते हैं, पकड़ में आ जाते हैं। 'नाम' की ताकत के बिना कोई भी जीव अपने अन्दर निवास करने वाले इन मत्सरों (दुश्मनों) पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता, चाहे कितनी भी कोशिश कर ले। 'नाम' के बिना किसी भी जीव का हृदय कभी भी 'शुद्ध' नहीं हो सकता, रौशन नहीं हो सकता। 'नाम' सिर्फ और सिर्फ एक पूर्ण 'सद्गुरु' से ही प्राप्त होगा, किसी अन्य गुरु से नहीं, क्योंकि 'नाम' इस तीन लोक की नहीं बल्कि 'चौथे लोक' की वस्तु है। 'नाम' के द्वारा ही जीव की 'आत्मा' अपने यथार्थ देश 'अमरलोक' और यथार्थ-स्वरूप - 'हँसा' की प्राप्ति कर सकती है; अन्यथा नहीं।



‘नाम’ से बड़ी ‘दौलत’ और कोई भी नहीं। जिस जीव के पास सद्गुरु का सच्चा विदेह-नाम है, उससे बड़ा दौलत मंद व्यक्ति इस ब्रह्माण्ड में और कहीं नहीं।

साहिब ने अपने दोहे/साखी/छंद आदि में कुल ‘चौदह अरब शब्दों’ का इस्तेमाल किया, लेकिन ‘सार-शब्द’ (सजीवन नाम) नहीं कह पाये, क्योंकि ‘सार शब्द’ लिखने/पढ़ने/बोलने में नहीं आता। जो ‘नाम’ जीवात्मा को ‘परम निर्वाण’ प्रदान करने की ताकत रखता है वो संसार के किसी धर्मग्रंथ में मौजूद नहीं है। वो ‘नाम’ केवल एक पूर्ण सद्गुरु की ‘सुरति’ में मौजूद है। वेद जिस निराकार सत्ता को ‘परमात्मा’ कह कर सम्बोधित कर रहे हैं, साहिब कह रहे हैं कि वही निराकार सत्ता ‘कालपुरुष’ है, निरञ्जन है; निराकार ‘मन’ है। निराकार से आगे का भेद वेद भी नहीं जानते हैं। इस तीन-लोक में रहने वाला हरेक जीव ‘कालपुरुष’ के आदेशों पर ‘कठपुतली’ की तरह नाच रहा है। ‘राम-नाम’ कैसे उत्पन्न हुआ यह बताते हुए साहिब ने शिष्य धर्मदास से कहा –

पुनि जस चरित भयो धर्मदासा । सो सब वरन कहौं तुवपासा ॥  
 ब्रह्मा विष्णु शंभु सनकादि । सब मिलि कीन्ही शून्य समाधि ॥  
 कौन नाम सुमिरौ करतारा । कौनहि नाम ध्यान अनुसारा ॥  
 सबहि शून्य महँ ध्यान लगाये । स्वाति सनेह सीप ज्यों लाये ॥  
 तबहि निरञ्जन जतन विचारा । शून्य गुफाते शब्द उच्चार ॥  
 ररा सुशब्द उठा बहुबारा । ‘म’ अक्षर माया संचारा ॥  
 दोउ अक्षर कहँ समकै राखा । राम नाम सबहिन अभिलाषा ॥  
 राम नाम लै जगहि दृढायो । काल फन्द चीन्ह न पायो ॥  
 यह विधि राम नाम उत्पानी । धर्मनि परख लेहु यह बानी ॥

इस सृष्टि में एक भी वस्तु/पदार्थ/तत्त्व/शब्द ऐसा नहीं है जिसे आत्मा की जरूरत हो। भ्रमवश आत्मा ने अपनी ताकत मन को देकर अपने आपको ‘मन-माया’ की इस त्रिलोकी सृष्टि में बाँधा हुआ है। भगवान्/ईश्वर/परमात्मा/अल्लाह/गॉड आदि सभी ‘निराकार निरञ्जन’ (मन-कालपुरुष)

के ही नाम हैं। संतो ने 'परमपुरुष' को 'साहिब/सत्यपुरुष' कहकर सम्बोधित किया जिनका अस्तित्व निराकार-निरञ्जन की पहुँच से परे है। सर्गुण भक्ति का लक्ष्य है 'स्वर्ग की प्राप्ति' और सुखों की कामना। निर्गुण भक्ति का लक्ष्य है 'निराकार निरञ्जन' की प्राप्ति। 'सत्य-भक्ति' का लक्ष्य है 'परम पुरुष' परममोक्ष की प्राप्ति। सर्गुण-भक्ति मुख्यतः 'भौतिक पदार्थों' पर संकेन्द्रित है। निर्गुण-भक्ति मुख्यतः 'पाँच शब्द- पाँच मुद्राओं' पर संकेन्द्रित है। सत्यभक्ति मुख्यतः 'सद्गुरु' पर संकेन्द्रित है।

'योगमत' (निराकार भक्ति) कमाई/साधना का मार्ग है, इसलिये योगी केवल साधना-कमाई को महत्व देते हैं, गुरु केवल मार्गदर्शक हैं। जबकि, संत-मत 'सद्गुरु कृपा' का मार्ग है; इसलिये संतजन केवल 'कृपा' को महत्व देते हैं।

**चौदह अरब कबीर बाखा। सार शब्द बाहर कर राखा।।**

**भवसागर है अगम अपारा। बिन सतगुरु नहीं पावे पारा।।**

संतों की जमात नहीं होती। संत तो विरले होते हैं। संत अपनी पहचान स्वयं ही देते हैं। संसारी जीव सच्चे 'संत' की पहचान नहीं कर सकते क्योंकि उनकी चेतना अत्यंत कुंद होती है। सर्गुण, निर्गुण, देव, त्रिदेवों की भक्ति आदि करने वाले 'संत' नहीं होते। संत तो स्वयं उस 'परमपुरुष' का तद्रूप होते हैं जिनकी महिमा का बखान धर्मग्रंथ/शास्त्र भी नहीं कर सकते। 'संत' तो स्वयं 'सत्यस्वरूप' होते हैं जिनके मुखारविंद से निकला हर शब्द 'परमचेतन' होता है जो किसी भी जीव के हृदय को पल में प्रकाशित करने की ताकत रखता है। संत के पास वो अद्भुत शक्ति है जिसके द्वारा वह किसी भी जीव को अपने समान बना सकता है। परमात्मा से ज्यादा ताकत 'संतों' में होती है। संसारी जीव 'परमात्मा' को खोजता है और परमात्मा स्वयं संतों को खोजता है; क्योंकि संतजन उस बयार (हवा) की तरह होते हैं जो 'सत्य' की खुशबू को अपने में संजोकर 'लोक-लोकान्तरों' तक पहुँचाते हैं। यह कार्य केवल सच्चे संतजन ही कर सकते हैं, परमात्मा नहीं। संत-सद्गुरु जब चाहे, जिसका चाहे, कर्म

का लेखा मिटा सकता है, विधि का विधान बदल सकता है, अपनी कृपा द्वारा। जिसे सच्चे संत की शरण और 'नाम' रूपी दिव्य औषधि मिल जाती है, वो जीव हमेशा के लिए 'कर्म' और 'काल' के बँधन से मुक्त हो जाता है। साहिब वाणी है -

सभी रसायन हम करी, ना ही नाम सम कोय।  
 रंचक घट में संचरै, सब तन कंचन होय॥  
 वस्तु कहीं दूढ़े कहीं, केहि विधि आवे हाथ।  
 कहे कबीर सब पाइये, जब भेदी लीजै साथ॥

### अकह नाम ( सार-शब्द )

कबीर साहिब ने अकथ-कथा, जो कही नहीं जा सकती, जो कभी नहीं कही गई - कहकर समझाया कि श्वाँस-सार 'परमपुरुष' से ही प्रकाशित है। बिना नाल अथवा बिना किसी आधार के सुरति-कमल विहंगम-रूप से गतिमान है, अनुपम है। इसी में 'परमपुरुष' का स्वरूप समाया है। वाणी है-

धर्मदास मैं कहौ बुझाई। अकथ कथा कछु कही न जाई॥  
 आदि अन्त को नाहि निवासा। श्वाँस सार पुरुष परकाशा॥

परमपुरुष ने जब तक स्वयं को प्रकट नहीं किया था, स्वयं में ही थे। फिर उनकी मौज हुई और स्वरूप प्रकाश को अपने में से छिटक दिया। अनंत बूँद-रूप वापिस उस अद्भुत, आनंदमयी श्वेत-प्रकाश में आकर समा गई। जिस प्रकार समुद्र में से पानी ऊपर उछल कर असंख्य कण बिखर जाते हैं और पुनः समुद्र में गिरकर वे समस्त बूँदें समुद्र ही हो जाती हैं। उसी तरह परमपुरुष के उस स्वरूप, अद्भुत-प्रकाश में से अनंत-कण वापस उस परमपुरुष रूप में आए; लेकिन वे बूँद-कण समाहित होकर विलीन नहीं हुए, उनका अलग अस्तित्व रहा। क्योंकि सत्यपुरुष ने इच्छा की कि उन अनन्त बूँद-कणों का अलग अस्तित्व भी रह जाये। वे समस्त

परम-अंश रूप कण ही 'हँस' होकर उसी अद्भुत सत्यपुरुष रूप प्रकाश में विचरण करने लगे।

उन सत्यपुरुष-अंश रूप हँसों का अलग अस्तित्व के साथ विचरण अद्भुत आनन्दमयी था। जिस तरह जल में मछली घूमती रहती है, उसी तरह सब प्रकाशमयी 'हँस' उस परमप्रकाश में घूमने लगे। उस परमपुरुष स्वरूप अमरलोक में प्रत्येक 'हँस' का प्रकाश सोलह-सूर्यों के समान है।

परमपुरुष से चैतन्य प्रकाश के अंश होने के कारण निरञ्जन के माया शरीरों में 'जीव-रूप' आने पर शरीर भी चैतन्य हो जाता है। सत्यपुरुष की प्रथम इच्छा ही 'सार-शब्द' होकर उन परमपुरुष की 'सुरति' से विहँग-रूप जुड़ी है। परमपुरुष ने जब स्वयं को प्रकट किया तो श्वाँसा ही 'सारशब्द' रूप निर्मित हुई। यही भेद साहिब ने शिष्य धर्मदास को बताते हुए समझाया कि 'सारशब्द' ही गुप्त 'नाम' है जो विहँगम्-मार्ग द्वारा शिष्य को सद्गुरु-सुरति से जोड़े रखता है। 'हँस' रूप आत्मा निरञ्जन (कालपुरुष) और आद्यशक्ति (माया) द्वारा इस त्रिलोक की माया-सृष्टि में 84 लाख-योनियों में कैसे बाँधी गई।

'सार-शब्द सतपुरुष कहाया।' यह सार-शब्द परमपुरुष स्वयं हैं। इसका अर्थ है 'सार शब्द' मालिक है, सच्चा परमात्मा है। वो ध्वनि-रहित शब्द है। उसे 'निःशब्द' शब्द कहा गया। उसमें प्रकाश भी है, पर वो बड़ा-अद्भुत है, सांसारिक प्रकाश नहीं है। दो वस्तुओं के टकराव से उत्पन्न होने वाला शब्द नहीं है। वो ध्वनि-रहित शब्द है। वो शून्य के पार से उठता है। ध्यान भजन में कभी आपकी रूह को वो 'शब्द' उठाना चाहता है। वो शून्य पार से आता है।

स्वतः सहज वह शब्द है, सार शब्द कह सोय॥  
 सब शब्दों में शब्द है, सबका कारण सोय॥  
 प्रकृति पार वह शब्द है, अगम अचिंत अपार॥  
 अनुभव सहज समाधि में, अज गुरु चरण अधार॥  
 मनवाणी से पार है, साहिब शब्द स्वरूप॥  
 योग ज्ञान गम्य सत्य को, दर्शित पुरुष अनूप॥

दस-रूपों में समाई प्राणवायु में ही 'निरति' के संग सात-सुरति भी हमारी देह में समाई हैं। सातों नामों से देह-सृष्टि में समाई सुरति को समेट कर विहंगम्-मार्ग से मूल गुप्त 'नाम' द्वारा 'हँस' का निर्वाण सद्गुरु करते हैं। सात-सुरति नालों का वर्णन करते हुए साहिब ने समझाया (1) सिंधु नाल, (2) पुहुप नाल, (3) अमीनाल, (4) सुरति नाल, (5) अग्रनाल, (6) सोहंग नाल, और (7) अजर नाल इन सातों-सुरति खजाने को परखने वाला विशेषज्ञ केवल एक 'सद्गुरु' ही है। सुरति से निरति को एक करके सत्य-शब्द तक ले जाने वाला सद्गुरु ही जीव-मुक्ति का ज्ञानदाता है। ऋषि-तपस्वियों-योगियों ने अपनी साधना-तपस्या से पिण्ड-ब्रह्माण्डों में जो कुछ देखा उसी अनुभव को वेद मंत्रों में व्यक्त किया। 'सद्गुरु' ही 'सार-शब्द' देकर जीव को भवबंधन से छुड़ाते हैं। शून्य और महाशून्य ब्रह्माण्डों के 21 लोकों से परे 'अमरलोक' जो सद्गुरु का मूल घर है, न्यारा है।

यही सप्त नाल है सही। यही हँस नाम निरबही॥  
 सप्तनाल के सातों नामा। बीर बिहंग करै सब कामा॥  
 सिंधु नाल में हँस पठाय। पुहुप नाल सो सकल सुहाय॥  
 अमीनाल में हँस पयाना। सुरति नाल से हँस सिधाना॥  
 अग्रनाल महँ करत अहारा। सोहंग नाल को सकल पसारा॥  
 अजरनाल घट कीन्ह विचारा। तबै पुरुष को दर्श निहारा॥  
 सप्तनाल है एकै गाऊँ। सोई सुरति भेद निज पाऊँ॥  
 सद्गुरु मिले वस्तु निज पावै। बिन सद्गुरु को भर्म मिटावै॥  
 सद्गुरु दया सबै कछु पाई। बिन सद्गुरु वह जाई नशाई॥

...दस-वायु रूप प्राण 'निरति' हैं। इनमें चार महाप्राण-वायु - अपान, समान, उदान, प्राण हैं। कुल दस प्राण हैं जो नौ-नाड़ियों में घूम रहे हैं। (1) अपान, (2) उदान, (3) प्राण, (4) नाग, (5) समान, (6) सर्वतन व्यान, (7) देवदत्त, (8) किरकिल, (9) धनंजय, (10) जिम्हाई। इन प्राण-वायु रूप 'निरति' में 'सुरति' फँसी है। इस तरह आत्मा अपनी शक्ति देकर अपने स्वरूप को भूली हुई है। मनुष्य शरीर की जंघाओं से

तलुवों तक 7- पाताल अतल, वितल, सुतल, तलातल, महांतल, रसातल, और पाताल लोकों के ऊपर सृष्टि रूपी शरीर के सात-लोकों में मूलाधार चक्र ( गुदास्थान), ब्रह्म लोक स्वादिष्ठान (लिंग स्थान), विष्णु लोक (नाभि स्थान), शिव लोक (हृदय स्थान), शक्ति लोक (कण्ठ चक्र), आज्ञा चक्र या तीसरा तिल और निरञ्जन लोक सहस्रसार (सिर की चोटी का स्थान) दसवाँ द्वार है इससे ऊपर सात-महाशून्य के (1) अचिन्त लोक, (2) सोहंग लोक, (3) मूल सुरति लोक, (4) अँकुर लोक, (5) इच्छा लोक, (6) वाणी लोक, (7) सहज लोक हैं। इस प्रकार 21 लोकों तक निरञ्जन-सृष्टि का विस्तार है। आत्मा का इनसे बाहर निकलना सर्गुण-निर्गुण भक्ति की किसी भी तप-साधना से सम्भव नहीं है। हाँ, सुरति से इन सब लोकों की यात्रायें सम्भव हैं। योग की पाँच मुद्राओं – पाँच शब्दों की साधना से आगे कबीर साहिब ने सुरति के सात-महाशून्यों और उनसे आगे अमरलोक का वर्णन किया है। पाँच-शब्द और पाँच मुद्राओं के महायोग से भी कोई पार नहीं लगने वाला।

प्रथम शिव, दूसरे दत्तात्रय, तीसरे शुकदेव, चौथे व्यास देव, पाँचवे श्रीकृष्ण और छठवें गुरु-गोरखनाथ योगेश्वर हुए वे सभी सहस्रसार अर्थात् निरञ्जन लोक की सीमा तक रहे, आगे नहीं जा पाये।

**मुद्रा साध रहे घट भीतर, फिर औंधे मुँह लटके।**

स्नायु-मण्डलों को जगाने पर विराट को तो देखा जा सकता है, पर 'आत्मा' मुक्त नहीं होगी। अमरलोक नहीं मिलेगा। हमारे शरीर में पूरा खेल ही 'पवन' का है। सर्व-साधारण के लिये यह भक्ति मार्ग नहीं है, न ही यह मुक्ति मार्ग है। ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी जिसे नहीं प्राप्त कर सके। वाणी है-

**केते ब्रह्मा होय होय गयऊ। सनकादिक से निश्चय भयऊ॥**

**ध्यान जो निरञ्जन माहीं। निरञ्जन से न्यारा कोउ नाही॥**

**निरञ्जन अंश हँस अवतारा। सकल सृष्टि है ताहिं मँझारा॥**

**भग भुगते फिर फिर भव आवे। भग ते बच न कोई पावे॥**

**चौदह लोक बसें भग माहीं। भग ते न्यारा कोई नाही॥**

न्यारी युक्ति मैं तुमहिं दिखाई । तहाँ सुर्त रहै साध कहाई ॥  
जब लग भीतर लगन न लावै । तब लग सुर्त न कबहुँ जागे ॥  
सत्यनाम की खबर न पाई । कांकर भक्ति करौ रे भाई ॥  
ठौर ठिकाना जानत नाहीं । झूठे मग्न रहैं मन माहीं ॥  
कहन सुनन को भक्त कहावैं । भक्ति भेद कितहुँ नहीं पावैं ॥  
ऐसे भूल परे संसारा । कै से उतरे भवजल पारा ॥  
सत्य भक्ति को नहीं लागा । ऐसे हैं सब जीव अभागा ॥

कबीर साहिब ने भवसागर से मुक्ति की सहज और न्यारी युक्ति दिखाई । सद्गुरु सुरति के सिमरन में रमे रहने को भीतर लगन लगाना कहा । ऐसा भक्त ही 'साधु' होकर अपनी 'सुरति' को जगा लेता है । ठौर-ठिकाना जाने बिना लोग मन में ही मग्न रहकर भक्त कहलाते हैं और भक्ति-भेद कोई नहीं पाता ।

योग-अभ्यास में योगीजन मूलाधार चक्र से स्वाँसा को खींच कर नाभिचक्र में लाते हैं । नाभिचक्र से खींचकर हृदय तक लाते हैं । हृदय से प्राण वायु को खींचकर कण्ठ चक्र तक लाते हैं । फिर इङ्गला-पिङ्गला (नासिका के दायें बायें से चलने वाली प्राणवायु) को सम (लय) करके सुषुम्ना में लाने का कठिन अभ्यास करते हैं । इससे पूरा शरीर सीज हो जाता है ।

इङ्गला-पिङ्गला सम करने पर स्वाँसा ऊपर की ओर चलती है यही 'सुरति' से 'निरति' पवन को घेरना है । हमारी स्वाँसा शून्य से नाभि में आ रही है, इसे ही पलटकर उर्ध्वमुखी कर दिया । जब स्वाँसा ऊपर की ओर चलने लगी तो सभी 10 वायु 'निरति' रूप 'प्राण' धीरे-धीरे सुषुम्ना नाड़ी की तरफ़ आने लग जाते हैं । सुषुम्ना नाड़ी कफ़ रूप गोल-गठान से बन्द है; सब प्राण रूप 10 वायुओं अर्थात् 'निरति' की एकाग्रता और ध्यान की ताक़त से यह खुलती है । ऐसे सुषुम्ना नाड़ी खुल गई ।

चन्द और चकोर की रीति से ध्यान कर ।

पल ही पल में देख ले अजूबा कर ॥

गोस्वामी तुलसीदास जी भी कह रहे हैं -

**उलटा जाप जपा जव जाना ।**

**वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना ॥**

इस तरह सुषुम्ना जाग्रत/चेतन हो जाती है, अर्थात् हमारी स्वाँसा-पवन की ताकत से ही सुषुम्ना खुलती है। पर, यदि योगी की सुरति वहाँ से हट गई तो स्वाँसा-पवन फिर नाभि में गिर बैठ जायेगी। कोई भी इस असाध्य योग-तप से ब्रह्म समान हो सकता है। वाल्मीकि जी मरा-मरा जप कर नहीं, स्वाँसा को पलट कर ब्रह्म समान हुए। बड़े-बड़े पंथों वाले आज के गुरुआ लोगों ने आम लोगों में भ्रम-फैलाया कि - वाल्मीकि जी मरा-मरा जप कर ब्रह्म समान हो गये। साँस, सुरति और नाम एक करके स्वाँसा को उर्ध्वमुखी पलटा जाता है। ऐसी एकाग्र कठोर साधना से सुषुम्ना खुलती है।

सद्गुरु के सहज-मार्ग में शीश से सवा हाथ ऊपर अधर में अर्थात् आकाश-तत्त्व में जाए बिना 'नाम' को सुरति और निरति में समाकर सद्गुरु सिमरन में रहना है। अमर-तत्त्व जो परमपुरुष का अंश है, उसी तत्त्व को मथकर सद्गुरु अपनी 'सुरति' को शिष्य की 'सुरति' से मिलाकर, पार ले जाते हैं। निरञ्जन के लोक सहस्रसार (दसम द्वार) में दाहिने कमल को सुरति पाती है। यहीं से आगे का ध्यान सुरति-कमल 'सद्गुरु' स्थान है; इसी आत्म-तत्त्व का मूल-शब्द मैंने शिष्य को दिया है। सात-सुरत निरञ्जन स्थान के बाद अष्टम-कमल, इसी सुरति-कमल स्थान को कहा है।

शरीर में निरञ्जन की सात-सुरत का वर्णन करते हुए कबीर साहिब ने वाणी में कहा -

**प्रथमहिं अमी सुर्त निज ठौरा । तहाँ निरञ्जन कीन्हा दौरा ॥**

**वहाँ जाय अमी ले आवै । ताहों अजर बीज उपजावै ॥**

**सोई बीज रक्त में धरहिं । यह विधि सों वह उत्पत्ति करहिं ॥**

**बीजहि जल का रंग कहाया । तासों रची सकल की काया ॥**

**दूजी मूल सुर्त तेहि संग्गा । घट घट माहिं बनावे रंगा ॥**

**तीजी चमक सुर्त अम्बारा । नौ नाड़ी में किया पसारा ॥**



कोठा तहाँ बहत्तर करई । रोम रोम युक्ति सब धरई ॥  
 चौथी शून्य सुर्त है भाई । धर्मदास में तुम्हें लखाई ॥  
 पंचम सुर्त श्रवण संग होई । शुभ और अशुभ सुनावे दोई ।  
 छटवें सुर्त ठिकाना भाषों । ठाँव ठाँव स्वाद तिहि चाखों ॥  
 सो तो रहे कण्ठ के द्वारा । वाणी भाषा कहै विचारा ॥  
 सप्तम सुर्त रहै तन माहीं । हृदय से कहूँ न्यारे नाहीं ॥  
 ब्रह्म रूप धर तहाँ वह बैठी । गुप्त पसार सकल घट पैठी ॥  
 कोई न जाने ताको मरमा । ज्ञानी ध्यानी सबही भरमा ॥  
 सात सुर्त का कहो विचारा । धर्मदास कछु वार न पारा ॥

### अष्टम कमल

अष्टम कमल ब्रह्माण्ड के माहीं । तहाँ निरञ्जन दूसर नाहीं ॥  
 आठ कमल का बनो ठिकाना । धर्मदास बड़ भागी जाना ॥

सप्त कर्म अरू शून्य सात, सात सुर्त स्थान ।  
 इक्कीसों ब्रह्माण्ड में, आप निरञ्जन ज्ञान ॥  
 राज निरञ्जन देखता, ठाँव ठाँव भरपूर ॥  
 रसातल से ब्रह्माण्ड तक, कहूँ निकट कहूँ दूर ॥

आठवाँ चक्र जिसे अष्टम कमल दल या आठ-अटा की अटारी संतों ने कहा – सुषुम्ना से ऊपर का द्वार है । उच्च कोटि के संत हुए दरिया साहिब कह रहे हैं – ‘दरिया दरबारा खुल गया अजर किवाड़ा ।’ गुरु नानक देव जी ने इस अष्टम चक्र का सुंदरता से वर्णन करते हुए कहा –

आठ अटा की अटारी मँझारा देखा पुरुष न्यारा ।  
 निराकार आकार न ज्योति, नहिं वह वेद विचारा ॥  
 ओंकार करता नहिं कोई, नहिं वहाँ काल पसारा ॥  
 वो साहिब सब संत पुकारा और पाखण्ड पसारा ॥  
 सत्गुरु चीन्ह दीन्ह यह मारग, नानक नजर निहारा ॥

कबीर साहिब कह रहे हैं कि शरीर में फैली, 'निरत' पवन को घेरकर 'सुरति' के साथ एकाग्र करने से ऊपर 'शब्द' के मिलन से अपनी आत्मा का दर्शन करोगे। अपने 'आत्मस्वरूप' को सुरति से देख लेने पर अष्ट सिद्धि-नौ निधियाँ तुम्हारी दासी हो जायेगी।

सद्गुरु में सुरति एक रत्ती के किसी अंश बराबर भी कम न हो। दिन-प्रतिदिन आठों पहर सद्गुरु के सिमरन में सुरति गहरी होती जाये, कभी विश्वास में कमी नहीं आने पाये; इस तरह पूरे होश में रहो। सद्गुरु ने तुम्हें क्षमा-शील-दया-विवेक के गुण दिये हैं। इस शरीर के भीतर काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार वृत्तियों के भयंकर चोर घात लगाये बैठे हैं, इसलिये ज़रा भी बेपरवाह मत होना।

दुनिया में भक्ति की श्रेणी हैं : मुँह से शब्दों द्वारा बोलकर जपना सामान्य जाप है। जो अन्तर में 'मन' से जपते हैं वे देव हैं। केवल 'सुरति' से जाप करने वाला ही 'संत' कहलाता है। इसलिये सद्गुरु की सेवा और जाप 'सुरति' से करना ही सत्य-भक्ति है।

मुख से जपे सो मानवा, मन से जपे सो देव।

सुरत से जपे सो सन्त है, ताकी करिये सेव॥

यह मानव शरीर जीवन रूपी ऊषा काल है, इसी में 'सुरति-निरति' रूपी नौबत बज रही है, जो अन्य जीवों को नसीब नहीं है। इस द्वार से इधर-उधर मत देखो और सुरति को सार-शब्द पकड़कर ऊपर चढ़ाओ। सद्गुरु द्वारा दिया गया गुप्त सार-शब्द स्वतः ही सहज है और समस्त शब्दों का कारण है। इस निरञ्जन सृष्टि की प्रकृति से वह 'शब्द' परे है, अगम है, अपार है, परमपुरुष में समाया हुआ है। उस शब्द का अनुभव सद्गुरु चरणों को आधार बनाकर सहज समाधि में होगा।

अब चल ऊषा काल है, नौबत बाजत द्वार।

इधर उधर मत देखिये, चढ़िये सुरति सम्हार॥

आत्म-ज्ञान के बिना मानव जगह-जगह भटक कर केवल स्नान-पूजा

आदि में परमात्मा का अस्तित्व मान रहा है। 'आत्म ज्ञान बिना नर भटके, क्या मथुरा क्या काशी।' इस तरह आत्म-तत्त्व गौण है, पता नहीं चल रहा है। आत्मा का पता कैसे चले, बोध कैसे हो? सुरति और निरति के मिलने पर आत्म-तत्त्व का पता चलेगा। 'सुरति' का दूसरा नाम ध्यान है। इसी ध्यान या सुरति का दूसरा हिस्सा है - निरति। 'निरति' शरीर में फँसी हुई है, यह शरीर को चलाने वाली शक्ति है। हाथ-पैर-कान-नाक-आँख जो कुछ भी कार्य कर रहे हैं, निरति है। 'निरति' का ही नाम 'जीव' है। निरति का वास आँखों के पीछे है, पवन में समाई है। श्वाँस खुद-ब-खुद नहीं चल रही है, लगेगा कि कोई ले रहा है और छोड़ रहा है। इस क्रिया को करने वाला कौन है? 'निरति' यही है - जीव। इस श्वाँस से पूरा शरीर चेतन है - इसी में 'निरति' है।

जैसे दौड़ने के लिये दोनों टाँगों का समान महत्व है। जैसे काम करने के लिए दोनों हाथों का समान महत्व है, इसी तरह सुरति और निरति दोनों का एक हो जाना 'आत्मज्ञान' के लिए महत्वपूर्ण है। जब दोनों मिल जायेंगे तो मूल 'शब्द' दिखेगा।

रहितहि मुक्ति कठिन है, कोई न जानत भेद।

शब्दहि सुरति समाय के, हँसराज इह खेद॥

शब्द सुरति और निरति है, कहिबे है तीन।

निरति लौटि सुरतिहि मिली, सुरति शब्द लखि लीन॥

सुरति को 'मन' ने और निरति को 'माया' ने पकड़ रखा है, इन्हें एक नहीं होने दे रहे हैं। मन ने कैसे पकड़ा सुरति को, मन के चार रूप हैं - मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार। जब यह संकल्प करता है तो इसे 'मन' कहते हैं। इच्छायें 'आत्मा' की नहीं हैं; शरीर और मन की आवश्यकता है। कोई निश्चय करने पर यही 'मन' बुद्धि कहलाता है। मान लो, मन ने इच्छा की कमरा बनाना है फिर बुद्धि इस पर निश्चय करती है कि बनाएँ या नहीं, पैसा है या नहीं। यदि बुद्धि का निष्कर्ष है कि हाँ बनाएँ, निश्चय करती है तो फिर तीसरा रूप 'चित्त' सक्रिय हो जाता है। चित्त बताना शुरू करता है कि मजदूर

वहाँ फलानी जगह मिलेगा, सीमेंट वहाँ मिलेगा, रेत-बजरी-ईंट के लिए फलों को आर्डर देना है। जब हम इन सब के लिए चलकर वहाँ जाते हैं, कार्य शुरू करते हैं तो वो 'मन' का चौथा रूप अहंकार कहलाता है। इसलिये मनुष्य जीवन की जितनी भी अनुभूतियाँ हैं – मेरा घर, मेरे बच्चे, यह सब 'मन' है। 'कहत कबीर सुनो भाई साधो जगत बना है मन से।'

ध्यान सुरति कभी इच्छाओं में, कभी निश्चय में, कभी याद में ही लगी रहती है। बस, ऐसे ही मन ने 'आत्मा' को उलझा रखा है। 'आत्मा' का जिन कर्मों से कोई सम्बंध नहीं है, वो किये जा रही है, शरीर के निमित्त। खेती-बाड़ी, व्यापार-धंधा जितने भी कर्म हैं उनका 'आत्मा' से कोई सम्बंध नहीं है। सभी कर्म शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये हो रहे हैं। 'आत्मा' ने अपने को शरीर मान लिया है, यही 'अज्ञान' है। 'आत्मा' में भौतिक इन्द्रियाँ नहीं हैं, आत्मा का भोग-विलास से क्या सम्बंध है! किसी से कोई सम्बंध नहीं है आत्मा का, पर आत्मा इन कर्मों में 'निरति' पवन के साथ प्रविष्ट हो रही है। जिस तरह मकान 'नींव' के आधार पर खड़ा है, इसी तरह अज्ञान ही इस संसार का आधार है। ज्ञान हो जाने पर संसार का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। गुरु वशिष्ठ मुनि से जब राम जी ने संसार के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा – हे राम! किस संसार की बात कर रहे हो, संसार कभी उत्पन्न ही नहीं हुआ है; यह तुम्हारे चित्त की कल्पना है। चित्त (मन) का निग्रह करो, संसार का अस्तित्व ही मिट जाएगा। जो कुछ भी हम अनुभव कर रहे हैं, 'मन' है जो 24 घण्टे 'आत्मा' को भरमा रहा है। ज्ञान की प्राप्ति के बाद संसार का अस्तित्व उसी प्रकार समाप्त हो जाता है, जैसे रस्सी को साँप समझ लेने का भ्रम।

मन 24 घण्टे आत्मा को आखिर क्यों भ्रमित किये हुए है? क्योंकि जितने भी काम हैं, उनमें 'आत्मा' की उर्जा (शक्ति) चाहिए। यदि 'आत्मा' तत्व को निकाल दो तो संसार में कुछ नहीं होगा, सब वीरान है। मन कभी आत्मनिष्ठ नहीं होने देगा क्यों कि फिर कोई काम नहीं करेगा। इसलिये भ्रमित किये हुए हैं 'मन'।

सुरति में रच्यो संसारा। सुरति करै तब उतरै पारा॥  
 जेठौ अंश सुरति जो आही। पुरुष संग वह सदा रहाही॥  
 जबहि पुरुष कीन्ही इच्छा। तबहि प्रकट भई सब शिक्षा॥  
 सुरति शब्द पुरुषहि उपजाई। सुरति प्रसन्न लोभ रच आई॥  
 सुरति निरति सुख देह अनंदा। मेटत सुरति सकल दुख दुंदा॥  
 सुरति निरति जब एके होई। तब साहिब के देखे सोई॥

कहै कबीर वह सुरति ते, सब कुछ भयो प्रकाश।

शब्दहि सुरति बिहँग है, लीन्ह अग्रमो बास॥

सुरति और निरति का मेल नहीं हो रहा है तभी आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो रहा है। श्वाँसा-पवन शून्य से नाभि में चक्कर काट रही है; इसे ऊपर की ओर पलटना है, तभी सुरति और निरति का मेल हो पायेगा। इङ्गला-पिङ्गला चलती हैं तो साँस नाभि में आती है। इड़ा (इङ्गला) नासिका का बायाँ स्वर और पिंगला (पिङ्गला) दायाँ स्वर है; जब दोनों सम होकर उर्ध्वमुखी चलेंगी तो सुषुम्ना खुलेगी। गुरु नानक देव जी कह रहे हैं—

इङ्गला पिङ्गला सुषुम्न बूझे, आपे अलख लखावे।

ताके ऊपर साँचा सद्गुरु अनहद सुरत समावे॥

मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार का निग्रह करने के बाद जो बचता है, वो ही 'आत्मा' है। साहिब वाणी में कह रहे हैं —

सुरति रूप देखो निरधारा। मन बुद्धि चित्त पवन से न्यारा॥

पाँच तत्व की रचना देही। इनते सुरति जो आहि विदेही॥

ब्रह्म अंग से प्रगटी आई। तीनि अंग गुण कला धराई॥

सत्य रूप से सुरति बखानौ। चेतन अंग निरति कहँ जानो॥

सुरति रूप चैतन्य समाई। चैतन रहित शब्द लौ लाई॥

कहे कबीर सुरति बल, अपने पुरुषहि देख।

मन बुद्धि चित्त समेटिके, चेतन रूप विशेष॥

आप आपहि रमि रहो, आत्मरूप परवान।

यासों रहित अपार है, परमात्म सुस्थान॥

इङ्गला-पिङ्गला सम (मिलकर) होकर उर्ध्वमुखी चलेंगी तभी मन, बुद्धि, चित्त से पवन (निरति) अलग होकर सुरति के साथ अधर में उलट कर चलेगी। पाँच-तत्व की मानव देह से विदेह-सुरति पृथक् है, परन्तु यही ब्रह्म (निरञ्जन) के अंग से संसार में तीन-गुणों की कला से युक्त होकर प्रगटी है। निरति संग चेतन शरीर में समाई 'सुरति' शरीर से ऊपर (शीश से सवा हाथ) जाकर ही परम 'शब्द' से लग्न लगाती है। कबीर साहिब समझाते हैं कि इस तरह आप अपने विशेष चेतन रूप से परमात्मा - अमरलोक को 'आत्मरूप' होकर पहचानोगे।

सुषुम्ना नाड़ी खुलने का मतलब है 10 वायुओं को अपने मुकाम में खींच करके सुषुम्ना नाड़ी में ले जाना। जब ये 'निरति' रूप वायु अपने-अपने स्थान से उठ जायेंगी तो शरीर काम करना बंद कर देगा और आपकी उर्जा खर्च नहीं होगी। ज़मीन में समाधि लेने वाले योगी-साधक भी सभी वायुओं को ऊपर उठाते हैं और आज्ञा-चक्र में ले जाते हैं। कुछ प्राणायाम द्वारा कुम्भक-रेचक ज्ञान से अपना पवन-संग्रह करते हैं और वे मेरुदण्ड से भी पवन खींचते हैं। आज्ञा चक्र में जाकर निग्रह करते हैं, ये पवन-क्रियायें कहलाती हैं, लेकिन वे कभी 'दसम द्वार' तक नहीं पहुँच पाते; आज्ञा चक्र तक पहुँचते हैं। आज्ञा चक्र में भी अपने स्वरूप का अनुभव होता है लेकिन उसमें 'मन' शामिल रहता है।

'आत्मा' शरीर में कैसे है? कैसे शरीर से आत्मा को निकाला जाता है? मानव देह में कितने शरीर हैं इनमें सुरति किस प्रकार मन के साथ क्रियाशील है? किस तरह अन्दर की यात्रायें होती हैं जो आत्मानुभूति नहीं है, आत्मज्ञान नहीं है, आध्यात्म नहीं है।

**भक्ति भक्ति सब जगत बखाना, भक्ति भेद कोई विरला जाना ॥**

हरेक इंसान की देह में छः शरीर हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, ज्ञान और विज्ञान। ये सब अद्भुत-अद्भुत शरीर हैं, जिनमें 'मन' सुरति-निरति के साथ शरीर रूपी ब्रह्माण्ड के खेल दिखाता है।

पहला स्थूल-शरीर पंच भौतिक तत्वों का है, जिसमें पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, चार अन्तःकरण और पच्चीस प्रकृतियाँ हैं, जिसमें आप हैं, आपका व्यक्तित्व है। स्थूल शरीर में ये जो जाग्रत अवस्था है, हम इससे पूरा संसार देख रहे हैं।

निद्रा अवस्था में जाते हैं तो एक और शरीर मिलता है और आदमी एक सूक्ष्म अवस्था में होता है। जीवन में हजारों बार आप जाग्रत अवस्था से निद्रा की स्वप्न अवस्था में जाते हैं। स्वप्न अवस्था से फिर जाग्रत अवस्था में आते हो। आपको पता नहीं, यह सूक्ष्म शरीर बड़ा बारीक है इसमें जो कुछ भी आप स्वप्न में देख रहे होते हैं वो सब वास्तविक ही लगता है। वो सब जाग्रत अवस्था जैसा ही आभासित होता है। इस सूक्ष्म शरीर में जाना लक्ष्मण और अर्जुन जानते थे और योगेश्वर भी। उन्होंने निद्रा को जीता था, शरीर से निकलकर निद्रा अवस्था में प्रवेश ले लेते थे। तब स्वप्न दिखने लगता है। निद्रा अवस्था में कम ज्ञान है, पर आप काफी चीजें देखते हैं, तमाम खेल खेलते हैं। आप स्वप्न-लोक देखने लगते हैं।

तीसरा शरीर है 'कारण', ध्यान एकाग्र हो जाता है तब यह कारण-शरीर मिलता है। आप सत्संग में बैठे हैं, मुझे सुन रहे हैं, समझ रहे हैं, देख रहे हैं। अगर आपका ध्यान यहाँ से हट जाए तो मुझे देख भी नहीं पायेंगे, सुन नहीं पायेंगे, समझ भी नहीं पायेंगे। इसका मतलब है कि ये ध्यान (सुरति) के अंदर देखने, सुनने और समझने की तीनों शक्तियाँ हैं। ये ध्यान-सूत्र ही बड़ी खास चीज़ है। कभी-कभी आप किसी को कहते हैं, भैया कहाँ ध्यान है। बैठा हुआ है; किसी सोच में कहीं पहुँच गया... तो आप पूछते हो भैया हो कहाँ! अर्थात् कहाँ है सुरत; आपका ध्यान। बैठे हैं आप, आपको कुछ भी पता नहीं चलेगा, आप कैसे कहाँ पहुँच गए ध्यान से। ये है कारण शरीर।

चौथा 'महाकारण' शरीर मसुर के दाने जितना है। योगेश्वर- कुम्भक, रेचक, पूरक द्वारा प्राणों का आयाम करके निकालते हैं। उससे ब्रह्माण्डों का अन्दर का पूरा खेल वो देखते हैं। गोरखनाथ जी इसमें माहिर थे।

पाँचवाँ है - 'ज्ञानदेही' शरीर। इसमें साधक ब्रह्मनिष्ठ हो जाता है - कहता है 'अहं ब्रह्मस्मि' शरीर गौण हो जाता है।

छटा है 'विज्ञान देही'। संतों को इसका ज्ञान होता है। इसमें 'सुरति' आँखों के बिना देखती है, कानों के बिना सुनती है, पैरों के बिना चलती है, हाथों के बिना काम करती है। विज्ञान देही को ही अन्तवाहक कहते हैं। गोस्वामी तुलसीदास 'रामायण' में भी कह रहे हैं -

पग बिन चले सुने बिन काना,  
कर बिन कर्म करे, विधि नाना।  
रसना बिन सकल रस भोगी,  
वाणी बिन वक्ता बड़ योगी।  
तन बिन परस नयन बिन दरशे,  
पाये ध्यान वो शेख विशेखे।  
यह विधि सबहि अलौकिक करणी,  
महिमा जाए कौन विध वरणी॥

विज्ञान देही अत्यंत तीव्रग्रामी है, अति सूक्ष्म है, चट्टान के अन्दर से भी निकल जाती है। इस शरीर से पूरे अंतर ब्रह्माण्ड की यात्रा होती है। आदमी इन दिव्य शक्तियों से सम्पन्न है फिर भी परेशान घूम रहा है। विज्ञान देही दसमद्वार से निकलते ही मिल जाती है। संत कहते हैं जिसने दसवें द्वार का रहस्य जाना उसने जीवन-मरण का रहस्य जाना, वह मृत्यु को जीत गया। किन्तु, जिसने एकादश (11वें) द्वार का रहस्य जाना वह अमरतत्व को प्राप्त हो गया।

नौ द्वारे संसार सब दसवाँ योगी तार।  
एकादश खिड़की बनी, शब्द महल सुखसार॥  
मकरतार के भेद को जानत सन्त सुजान।  
बिन सद्गुरु पावे नहीं, अन्तरतम गति ज्ञान॥

वास्तविक अर्थ में नाम-दान का यही भेद है। सद्गुरु के मार्गदर्शन में जीते-जी एकादश द्वार के रहस्य से पार पाया जावे।



पंच-मुद्राओं में ध्यान की दसमद्वार तक अधिकतम सीमा है, जो संसार में योग-योगेश्वरों ने निराकार ध्यान से पाई। पंच मुद्राओं से हमारे ऋषि-मुनि भी ध्यान किया करते थे जिन्होंने ब्रह्माण्डों को जाना था। संत-मत का सृजन तो सद्गुरु कबीर साहिब से हुआ; वह कह रहे हैं -

त्रिकुटि मध्य बसे निरञ्जन, मूँधे दसवाँ द्वारा।

ताके ऊपर मकरतार है, चढ़ो संभार संभारा॥

संसार में साकार और निराकार भक्ति में 'शब्द' को ही परमात्मा मान रहे हैं। संतमत में अक्षर शब्द या अनहद शब्द को भी परमात्मा नहीं माना जाता। शब्द में परमात्मा हो सकता है, पर शब्द परमात्मा नहीं है। कण-कण में परमात्मा है, पर कण परमात्मा नहीं है न! आवाज़ दो के बिना नहीं होती। हवा चलने से भी आवाज़ होती है। जब हवा ज़मीन को छूकर चलती है तो भी आवाज़ होती है। इस तरह शब्दों की सत्ता महाशून्य तक ही है। उसके आगे 'शब्द' नहीं जा पाते। साहिब भी 'शब्द' के लिए कह रहे हैं पर इन शब्दों (धुनात्मक या वर्णनात्मक शब्दों) को उन्होंने परमात्मा नहीं कहा। वे तो साफ-साफ कह रहे हैं -

जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाए।

सुरति समानी शब्द में, ताकों काल न खाए॥

शब्द शब्द सब कोई कहे, सो तो शब्द विदेह।

जिभ्या पर आवे नहीं, निरख परख के लेह॥

सार-शब्द का महात्म बताने वाले कुछ लोग मुझसे मिले। मैंने जब नाम के बारे में उनसे पूछा तो जवाब मिला कि गुरु जी ने बोला है कि बताना नहीं है। मैंने कहा कि 'सार-शब्द' तो कहा ही नहीं जा सकता, लिखा भी नहीं जा सकता, आखिर तुम सार-शब्द किसे समझ रहे हो! कहीं भूल हुई है तुमसे। वाणियाँ तो कह रही हैं कि -

सार-शब्द कहा न जाई लिखा न जाई।

बिन सत्गुरु कोई नहीं पाई॥

....और तुम कह रहे हो कि मना किया है बताने को। मैं बताता हूँ तुम्हें कि साहिब कह रहे हैं -

**सार शब्द सत्पुरुष कहाया।** यह सार-शब्द स्वयं परमात्मा है।

इन्सान के शरीर में बड़ी दिव्य शक्तियाँ हैं, पर लोग इन दिव्य शक्तियों को ही आध्यात्मिक शक्तियाँ कह रहे हैं। भाइयो, ये आध्यात्मिक शक्तियाँ क्या हैं? क्या आत्मा के पास भी शक्तियाँ हैं? हाँ 'आत्मा' के पास छः शरीरों से बड़ी और निराली शक्तियाँ हैं। जैसे आपके बच्चों में आपके गुण, आपकी शक्तियाँ हैं; इसी तरह 'आत्मा' परमात्मा का अंश है, तो जो शक्तियाँ परमात्मा [साहिब परमपुरुष] में हैं, वो आत्मा में होंगी कि नहीं। पक्का होंगी! सबमें एक जैसी आत्मा है; आत्मा के अन्दर जो शक्तियाँ हैं, वे आध्यात्मिक हैं।

तप-साधना-योग-शब्द से दिव्य शक्तियाँ पाने वालों को अपने अन्दर की वृत्तियाँ काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार नज़र नहीं आते। शास्त्र, पुराण, कथाओं से सुनने में भी आता है कि बड़े-बड़े ऋषि, मुनि आदि बड़ी कठोर तपस्या करने के बाद भी काम-क्रोध आदि के वशीभूत हो गए। 'आत्मज्ञान' की आध्यात्मिक शक्तियों के बाद शरीर का खेल समझ में आने लगता है, मन-माया की विरोधी शक्तियाँ दिखाई देने लगती हैं, इन पर विजय प्राप्त हो जाती है। शरीर की दिव्य-शक्तियों से इन शत्रुओं पर विजय प्राप्त नहीं होगी। केवल आध्यात्मिक शक्तियों से ही ये शत्रु दिखाई देंगे। साहिब ने समझाया है -

धर्म चरित्र सुनो धर्मदासा। छल बुधि करन जीवन तिन फाँसा॥  
 धरि औतार कथा तिन गीता। अंध जीव कोई गम्य न कीता॥  
 अर्जुन सेवक अति लौ लीना। तासो ज्ञान कहयो सब भीना॥  
 ज्ञान प्रवृत्ति निवृत्ति सुनावा। तज निवृत्ति प्रवृत्ति दृढ़ावा॥  
 दया क्षमा प्रथमै तिन भाषा। ज्ञान विज्ञान कर्म अभिलाषा॥  
 अर्जुन सत्य भक्ति लवलीना। कृष्णदेव सों बहुत अधीना॥

प्रथम कृष्ण दीन्ही तेहि आशा। पीछे दीन्ह नर्क में बासा॥  
 ज्ञान योग तजि कर्म दृढाया। कर्मवशी अर्जुन दुख पाया॥  
 मीठ दिखाये दियो विष पाछे। जिव बटपार संत छवि काछे॥  
 कहँलों कहों छन्द यम के, संत कोइ कोइ परिख हैं॥  
 ज्ञान मरग दृढ़ रहै, तब सत्यमारग सूझिहैं॥  
 चीन्हि हैं यम छलमता तब चीन्हि न्यारा तो रहे॥  
 सत्गुरु शरण यम त्रास नाशैं, अटल सुख आनंद लहे॥

सर्गुण-निर्गुण भक्तियों के संदर्भ में साहिब शरीर की दिव्य शक्तियाँ प्राप्त करने के लिए कह रहे हैं कि दुनिया के लोग वो भी सही नहीं कर रहे हैं। सही भक्ति भीतर की सात्विकता से ही होगी। वास्तव में यह घट तीन-लोकों के ईश्वर (निरञ्जन) का मंदिर है। नाभि में विष्णु जी का निवास है, उनकी सही भक्ति इसी में है कि पेट में शराब, माँस आदि गंदे पदार्थ न डालें बल्कि सात्विक पदार्थ ही डालें। यदि हम बाहर जाकर मंदिर में उनकी भक्ति, पूजा-अर्चना करते रहें और माँस आदि भी खाते रहें तो यह विष्णु (ईश्वर) की सही भक्ति नहीं है। इससे तो उन्हें कष्ट पहुँचा रहे होते हैं। इसी तरह मुख के देवता हैं – अग्नि। इसमें सही पूजा यह है कि हम मुख से किसी को अपशब्द न कहें, गाली न दें। इसी तरह यदि हम बुरा न सुनें तो यह कानों के देवता ‘दिशाजी’ की सच्ची उपासना होगी। इसी तरह 33 करोड़ देवता भी इसी शरीर में निवास कर रहे हैं। सृजनकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता इसी मानव शरीर में हैं। राम, कृष्ण आदि भी इसके भीतर ही अवतार लेते हैं; इसी में ऋद्धि-सिद्धि के कभी न खत्म होने वाले भण्डार भरे पड़े हैं। काया के भीतर इन भण्डारों को प्राप्त करने वाला तो सम्राट/शहंशाह/बादशाह बन जाता है। देखें वाणी—

...या घट भीतर ब्रह्मा विष्णु, शिव सनकादि अपारा।  
 या घट भीतर आये लेत हैं, राम कृष्ण अवतारा॥  
 या घट भीतर कामधेनु है, कल्प वृक्ष एक न्यारा।  
 या घट भीतर रिद्धि सिद्धि के भरे अटल भण्डार॥

पूरे तीन-लोकों की दिव्य शक्तियाँ मानव देह में हैं; इसी में तीन-लोकों का सृजनकर्ता भी है और कह रहे हैं इसी में हमारा गुरु भी है।

**या घट भीतर तीन लोक हैं, या ही में सिरजन हारा॥**

**कहे कबीर सुनो हो अवधू, या ही में गुरु हमारा॥**

....पाँचों तत्व काया में हैं – मूलाधार चक्र-गुदा स्थान पर, ‘पृथ्वी तत्व’ है। स्वादिष्ठान चक्र-शिशनेन्द्रिय पर ‘जल तत्व’ है। इसी तरह नाभि में ‘वायु तत्व’, मुख में ‘अग्नि तत्व’ और सुषुम्ना में ‘आकाश तत्व’ का वास है। फिर जितने भी ‘रंग’ दुनिया में दिख रहे हैं, वे इन्हीं पाँच तत्वों से हैं। पाँच तत्वों का ही खेल है। इन पाँच तत्वों से ही स्वाद है।

- पृथ्वी तत्व का रंग, ‘पीला’ और स्वाद मीठा है।
- जल तत्व का रंग ‘श्वेत’ और स्वाद खारा है। जल रंग युक्त और स्वादयुक्त है; ऊपर जाकर कभी देखना जल श्वेत नजर आयेगा। वैज्ञानिक ग़लत कह रहे हैं कि रंगहीन है, स्वादहीन है।
- अग्नि तत्व का रंग ‘लाल’ और स्वाद तीखा है।
- वायु तत्व का रंग ‘नीला’ और स्वाद खट्टा है। जब भी गैस बनेगी पेट में तो खट्टी डकारें आयेंगी।
- आकाश तत्व का रंग ‘काला’ और स्वाद फीका है।

अगर प्रकाश हटा दो तो शून्य... शून्य अंधकारमय है। इसलिये शरीर और ब्रह्माण्ड- पंच भौतिक तत्व के होने से नितान्त नाशवान हैं। वैज्ञानिक भी मान रहे हैं कि समस्त ब्रह्माण्ड नाशवान है।

दुनिया में सब ‘जीव’ शरीरों में बँधे हुए हैं। हम सब जो भी हैं, शरीर-धर्म का पालन कर रहे हैं। निःसंदेह हम सब शरीर के बँधन में बँधे हैं।

‘आत्मा’ नित्य है और उसका मूल लोक भी अनश्वर है नित्य है। सुरति उसे मूल शब्द में समाकर ही पहचानेगी; ‘आत्मा’ के गुण और स्वरूप को जानेगी। उस परम ‘शब्द’ से एक सद्गुरु ही अपनी सुरति देकर मिलाने में समर्थ है। साहिब वाणी में समझा रहे हैं –

धर्मदास सुनु पुरुष प्रभाऊ । पुरुष डोरि तोहिं अबहि चिन्हाऊँ ॥  
 पुरुष शक्ति जब आये समाई । तब नहिं रोके काल कसाई ॥  
 पुरुष शक्ति सुन षोडश आहीं । शक्ति संग जिव लोकहिं जाहीं ॥  
 बिना शक्ति नहिं पंथ चलाई । शक्तिहीन जिव भौ अरुझाई ॥  
 ज्ञान विवेक सत्य संतोषा । प्रेम भाव धीरज निरघोषा ॥  
 दया क्षमा अरुशील निःकर्मा । त्याग वैराग शांति निजधरमा ॥  
 करुणा कर निज जीव उबारै । मित्र समान सबको चित धारै ॥  
 इन मिलि लहे लोके विश्रामा । जले पंथ निरखी जेहि धामा ॥  
 गुरु सेवा गुरु पदे परतीती । जेहि उर बसे चले जम जीती ॥  
 आतम पूजा संत समागम । महिमा सन्त कहि निगमागम ॥  
 पुरुष नाम चक्षु परवाना । लहै जीव तब जाय ठिकाना ॥  
 दृढ़ परतीति गहे गुरुचरना । मिटै तासु जनम औ मरना ॥

जिस तरह पिंजरे का हरेक तार पंछी को कैद करने के लिए है; इसीतरह 'मन' की प्रत्येक वृत्ति आत्मा को कैद करने के लिए है। श्वाँसा के साथ 'निरति' शरीर में उलझी है, इन्द्रियों के साथ। शरीर में सार ही 'श्वाँस' हैं। मन और माया दोनों मिलकर 'सुरति' को बाहर जगत में उलझाये हुए हैं। सुरति और निरति का मिलन नहीं हो रहा है। साहिब ने यही बात योगेश्वर गोरखनाथ को गोष्ठी करते हुए समझाई।

गोरखनाथ जी ने पूछा : काया मध्य सार क्या है?  
 साहिब जी ने कहा : काया मध्य श्वाँसा सार।  
 गोरखनाथ जी ने पूछा : कहाँ से उठत है कहाँ को जाय?  
 साहिब जी ने कहा : शून्य से उठत है, नाभि दल में आए  
 गोरखनाथ जी ने पूछा : हाथ पाँव उसके नहीं, कैसे पकड़ी जाए?  
 साहिब जी ने कहा : हाथ पाँव उसके नहीं सुरति से पकड़ी जाए।

नौ नाथ चौरासी सिद्ध, इनको अनहद ज्ञान।

अविचल घर कबीर का, यह गति बिरला जान।।

....इङ्गला (इंड़ा) पिङ्गला के मध्य सुषुम्ना से होती हुई श्वाँस शीश से सवा हाथ ऊपर शून्य की ओर चलेगी, जहाँ सुरति और निरति का मेल होना है; पर 'मन' की लगातार कोशिश रहती है कि सुरति-निरति न मिल पायें।

सुरति के दण्ड से घेर मन पवन को,

फेर उलटा चले, धर और अधर बीच ध्यान लावे।

कहे कबीर सो संत निर्भय हुआ,

जन्म और मरण का भ्रम भाने।।

कबीर पंथ के अंदर भी बारह पंथ मत-मतान्तर हैं, वो भी उलझे हुए हैं। अन्तर्मुखी नहीं हो पा रहे हैं। केवल 'सद्गुरु' और 'नाम' कहकर भ्रम में हैं। किसी भी गुरु गद्दी का स्वामी न तो बालब्रह्मचारी है और न ही सन्यासी होकर घर-परिवार से अलग है। न ही कोई निज मेहनत से पेट भर रहा है, न ही परिवार से बाहर किसी पात्र शिष्य को गद्दी सौंप कर जा रहा। फिर भी अनेक संत मत के पंथ, सद्गुरु और सत्यलोक या चौथे लोक की बातें बता रहे हैं। एक गुप्त 'नाम' जाने बिना पाँच नाम देकर स्वयं संत और 'सद्गुरु' कहला रहे हैं। इसलिये समझा रहा हूँ -

केवल नाम कबीर का विरले जन जाना।

कबीर का गाया गायेगा, तीन लोक पछतायेगा।

कबीर का गाया बूझेगा तो अन्तर्गत को सूझेगा।।

इसलिये साहिब-बन्दगी सत्संग में कहता हूँ - 'जो वस्तु मेरे पास है ब्रह्माण्ड में कहीं नहीं है।' विश्वास के साथ विनम्रता से कह रहा हूँ।

जब तक शून्य अर्थात् निराकार को पाने की चाह है, तब तक भक्ति एक भ्रम है, क्यों निराकार तो 'कालपुरुष' 'मन' है। जब तक शरीर की आस है, तब तक भ्रम है, क्योंकि शरीर तो 'माया' है। इसलिये जब तक

एक पूर्ण 'सद्गुरु' से सच्चे 'नाम' की प्राप्ति नहीं हो जाती, तब तक सब कुछ भ्रम है। इस संसार में किसी भी स्थान की चाह रखना भ्रम है।

सच्चा 'नाम' ही वास्तव में सार-शब्द है और यह स्वयं साहिब ही है। इसलिये जब 'सद्गुरु' से 'सार-शब्द' मिल जाएगा तो 'जीव' का सारा अज्ञान समाप्त हो जायेगा और मनुष्य सत्य-भक्ति के पथ पर चलते हुए अपने सच्चे घर 'अमरलोक' को प्राप्त करेगा। 'हँस' होकर अपने निज 'अमरलोक' को प्राप्त करने वाली आत्मा फिर कभी इस त्रिलोक के भवसागर में वापिस नहीं आती।

'सार-शब्द' अनहद शब्द नहीं है। भक्ति मार्ग के कई पंथ और महात्मा अनहद शब्द को ही परमात्मा समझते और मानते हैं। यह भी उनका अज्ञान ही है। सच्चे संत तो कह रहे हैं निःशब्द है उसमें 'सुरति' से प्रवेश करना है।

शब्द कहो तो शब्दहि नहीं। शब्द होय माया के छाहीं॥

दो बिन होय नहिं अधर अवाजा।

कहो कहा यह काज अकाजा॥

नाम कहो तो नाम न जाका।

नाम धरा तो कालहि ताका॥

धर्मदास तहँ बास हमारा। काल अकाल न पावै पारा॥

ताकी भक्ति करै जो कोई। भव ते छूटै जन्म न होई॥

साहिब ने निःशब्द में प्रवेश के लिए ग्यारवहें-द्वार से निकलने की बात कही है। 10वें द्वार से निकलोगे तो कालपुरुष की सीमा से बाहर नहीं जा पाओगे। दसम द्वार पर ही तो निरञ्जन का वास है। शरीर में शीश पर चोटी का स्थान ही तो दसम द्वार है जो बंद है। सुषुम्ना खुलने पर दसम द्वार से ही निकलने का रास्ता मिलेगा। शरीर के शेष नौ द्वार तो खुले हैं जिनसे प्राण-वायु निकल जाने पर शरीर मृत हो जायेगा। इन्हीं नौ द्वारों में से किसी एक से जब 'जीव' जाता है तो उसका दूसरी देह मिलने का निर्धारण हो जाता है। अर्थात् कर्म अनुसार अंत समय 'सुरति' जहाँ रहेगी उसी अनुसार

संबंधित द्वार से 'जीव' जाएगा। जीवन भर जैसे वासना का कर्म किया है अंत में ध्यान भी वहीं जायेगा और कर्म विधानुसार दूसरा शरीर भी मिलेगा। मनुष्य अंतकाल पश्चात अपने कर्मानुकूल शरीर पाता है। यदि हेठ द्वार से प्राण निकलेंगे तो 'नरक' वास में जायेगा। साहिब वाणी में मृत्यु के बाद पुनः किस देह की प्राप्ति होगी इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। इससे भी मनुष्य के सुरति-निरति का रहस्य एवं मुक्ति मार्ग समझाया गया।

**हेठ द्वार से प्राण निकास। नरक खान में पाये वासा।।**

मल-द्वार से प्राण निकलेंगे तो आदमी नरक में चला जाएगा। भाई, जब आपके घर पुलिस वाला आता है तो डर जाते हो न! और पोस्टमैन आता है तो खुश हो जाते हो कि मनीआर्डर या पत्र आया होगा। इस तरह जब यमदूत लेने आते हैं तो जो अपराधी होगा उसे नरक में ले जाना होगा; ऐसे कुकर्मी आदमी का भय से मलमूत्र बाहर आ जाता है। समझना हेठ द्वार से प्राण निकले, सीधा नरक में पहुँच गया, पक्का।

**नाभि द्वार से प्राण जब जाई। जलचर योनि में प्रकटाई।।**

अगर मृत्यु के समय आदमी के प्राण पेशाब द्वार से निकले, इसको नाभि द्वार भी कहते हैं, तो यहाँ जलचर खानि में पहुँच जाएगा। नौ लाख जल के जीव हैं, वो केकड़ा, मेंढक, मछली, कछुआ आदि बन जाएगा।

**मुख द्वार से प्राण निकास। अन्न खानि में पाए वासा।।**

अगर मौत के समय इंसान के प्राण मुख से निकलें तो सीधा अन्न-खानि में जाएगा। अनाज खाने वाले कृमि-कोटि, घुन आदि बन जायेगा। ऐसे आदमी का मुख खुला रहेगा, बंद करो तो भी मुँह खुला रहेगा।

**श्वाँस द्वार से जीव जब जाई। अण्डज खानि में प्रकटाई।।**

अगर मौत के समय आदमी के प्राण नाक से निकले तो ऐसा लगेगा कि सोया हुआ है; वो पक्षी बन गया। हवा के रास्ते से गया। अण्डज खान चौदह लाख जीव हैं, उनमें पहुँच गया।

**नेत्रद्वार से जीव जब जाई। उकमज खानि में प्रकटाई।।**



अगर आँखों से प्राण निकल गए। तो 27 लाख कीड़े-मकोड़े- मक्खी-मच्छर जीव-योनि में पहुँच जाएगा। आँख खुली रह जायेंगी, बंद करोगे तो भी खुली रहेंगी; समझना नेत्र द्वार से प्राण गए। अपना पता छोड़ जाता है मरने वाला कि कहाँ गया है।

**श्रवण द्वार से जीव जब चाला। प्रेत देह पाय तत्काला।।**

अगर कान से प्राण निकले तो समझो प्रेत-योनि में पहुँच जाएगा आदमी। उसकी लाश देखकर ही भय लगेगा, समझना भूत-प्रेत को प्राप्त हो गया। तो ये हैं नौ द्वार।

**दसम द्वार से प्राण निकास। स्वर्ग लोक में पाए वासा।।**

दसम द्वार से जाने वाला करोड़ों वर्ष वैकुण्ठ-धाम (निरञ्जन लोक) में शांति-सुख भोग कर राजा होकर फिर पृथ्वी पर आएगा। ऐसे आदमी की मृत देह देखकर ऐसा लगेगा कि सोते हुए मुस्करा रहा है। क्योंकि लाटरी खुल गई वो दसम द्वार से गया।

दसम द्वार का सिरा तो सुषुम्ना नाड़ी के अंदर से है। ग्यारहवाँ-द्वारा साहिब ने 'सुरति' में कहा - अधर ध्यान; शरीर के समस्त द्वार स्थानों से परे शीश से सवा हाथ ऊपर 'अधर ध्यान' है।

ब्रह्म द्वार से जीव जब जाई। अमरलोक में बासा पाई।। 'जीवात्मा' ग्यारहवें द्वार से ही सत्यलोक जायेगी। 'बिन सद्गुरु कोई पावे नाहिं।' संतों ने जिस भक्ति की युक्ति बोली वो 'सुरति' से सार-शब्द में समाने की है। संत दादू दयाल जी कह रहे हैं -

**कोई सगुण में रीझ रहा, कोई निर्गुण ठहराय।**

**अटपट चाल कबीर की, मुझ से कही न जाय।।**

**हिन्दु तो हृद में चले, मुसलमान हृद पार।**

**दादू चाल कबीर की, दोड़ दीन से न्यार।।**

क्या कह रहा हूँ- ये निर्गुण भक्ति बेकार है क्या? नहीं-नहीं; मैं कह रहा हूँ - ज्ञान मिल जायेगा, सब चीजें आएंगी लेकिन मुक्ति/मोक्ष नहीं

मिलेगा। बार-बार जन्म-मरण की जीव-योनियों में आना पड़ेगा।

क्या करते हैं सद्गुरु? संतत्व की धारा कह रही है – ‘कोटि जनम का पंथ था, गुरु पल में दिया पहुंचाया।’ भवसागर का पार नाम बिना पावे नहीं। इस संसार सागर से ‘नाम’ के बिना आदमी पार नहीं हो पाएगा।

अकह नाम गुरु बिन न पावे।

पूरा गुरु हो तो पल में बतलावे॥

वो ‘नाम’ ऐसा नहीं जो दुनिया ने गुरुओं, ग्रंथों, शास्त्रों से पढ़ना या बोलना सीख लिया है। अब भक्ति पंथ के सत्संगों में भी नाम की महिमा गाई जा रही है। ‘कलियुग’ केवल नाम आधार। त्रेता में तपस्या और द्वापर में यज्ञ आदि की प्रमुखता थी। अभी ‘नाम दीक्षा’ लेने जा रहे भारी संख्या में लोग; तो गुरु और नामों के पंथ-आश्रमों की प्रतिस्पर्धा चल पड़ी। पर ये कैसा नाम है? सब यहाँ ग़लती कह रहे हैं समझने में। सबने सोचा कि नाम कोई वाणी का विषय है जो भी गुरु दे दे।

नहीं भाई वो नाम तो – ‘लिखा न जाई पढ़ा न जाई, बिन सद्गुरु कोई नाहिं पाई।’ ‘नाम नाम सब जगत बखाना, आदि नाम कोई विरला जाना।’ कबीर साहिब कह रहे हैं ये बिना सद्गुरु के नहीं मिलेगा। क्या कह रहे हैं –

भूँग मता होय जिह पासा। वो ही गुरु सत्य धर्मदासा॥

गुरु को कीजै दण्डवत कोटि कोटि प्रणाम।

कीट न जाने भूँग को वो कर ले आप समान॥

भाई चार-खानि योनियों में 84 लाख जीव-योनियाँ हैं। 27 लाख कीट हैं। जलचर खानि में 9 लाख जीव हैं उनका राजा मगरमच्छ है। दूसरी उक्खमज खानि में 27 लाख जीव हैं उनका राजा है भूँगा उसकी मादा नहीं है। मक्खी है तो मक्खी है। भूँगा मिट्टी का घर बनाता है। भूँगा किसी कीट-कीड़े को पकड़कर अपनी आवाज़ से उसे अपनी तरह बना देता है। तो कह रहे हैं ‘भूँगमता होय जिह पासा, वो ही गुरु सत्य धर्मदासा;’ जिसके पास भूँगी

की थ्योरी/सिद्धान्त है वो ही सद्गुरु संत है। भाई; सभी इस पूरे सृजन में नर (Male) है तो मादा (Female) है – स्त्री है तो पुरुष है। सबका जोड़ा है – तोता है तो तोती है। हँसा है तो हँसिनी है। पर वो भूँगा तो नर ही नर है; अपना अंश/पीढ़ी चलाता है। साहिब कह रहे हैं – गुरु भी ऐसा करेगा, तब वो गुरु, ‘सद्गुरु’ है।

आइए देखते हैं कि गुरु आपको क्या देता है। गुरु परमात्मा का रास्ता नहीं बताता – ‘कोटि जन्म का पंथ था गुरु पल में देय बताय।’ पारस ‘सुरति’ है संत के पास, क्योंकि वो उस अनंत में मिला है। वो ‘सुरति’ से आपका वर्ण पलट देगा। आपको अपनी तरह बना देगा, अपनी पूरी उर्जा आप में पहुँचा देगा। माया भी नहीं लगेगी। विषय विकार समझ में आने लगेंगे। हृदय प्रकाशित हो जाएगा, यह है अकह ‘नाम’। इसमें आपको योग करने की ज़रूरत नहीं है। जिस दिन से नाम प्राप्त होता है उस दिन से एक बहुत बड़ी सत्ता आपके साथ खड़ी रहती है। मन और माया ठीक से समझ में आने लगते हैं। अंदर का पूरा खेला समझ में आने लगेगा।

ये एक प्रक्रिया ही ‘नामदान’ कहलाती है, इसलिये ‘सुरति’ से वो नाम दिया जाता है। केवल पारस ही लोहे को सोना बना सकता है, दूसरे पत्थर नहीं हैं वो। इसलिये साहिब कह रहे हैं – सद्गुरु ही आपके अन्दर यह सत्ता दे देगा।

जा घट नाम न संचरै ते घट जान मसान।

जैसे खाल लोहार की श्वाँस लेत बिन प्रान॥

ऊँच वही जो नाम है जाना। नाम बिना सब नीच बखाना।

जिस मन ने आत्मा को बाँधा हुआ है ठीक-ठीक समझ में आएगा।  
‘तेरा बैरी कोई नहीं तेरा बैरी मन’।

जीव के संग मन काल को वासा।

अज्ञानी नर गहे विश्वासा॥

ये पूरी-पूरी परख, ये पूरी-पूरी समझ आने लग जाती है। दुनिया में

कोई भी अपने अन्दर मन को समझ नहीं पा रहा है। बुद्धि को समझ नहीं पा रहा है। आत्मा 'मन' के आधीन है।

मन ही स्वरूपी देव निरञ्जन तोहि राख भरमाई ।

है हँसा तू अमरलोक का पड़ा कालवश आई ॥

कालपुरुष जो भी चाह रहा है, आत्मा से सभी काम करा रहा है। आत्मा भ्रमवश अपनी उर्जा मन के अनुसार दे रही है। आत्मा अपने स्वरूप को समझ नहीं पा रही है। सद्गुरु-सुरति से ही 'आत्मा' जागेगी।

त्रिकाल में जितने भी बड़े तपस्वी-योगी-योगेश्वर हुए दसम-द्वार की साधना करते रहे और दसमद्वार खोला भी। दसम-द्वार खुलने से महाशून्य के अंतराल की अनुभूति होती है। कालान्तर में केवल छः योगेश्वर हुए उन्होंने दसमद्वार और महाशून्य की यात्रायें की हैं। साहिब की वाणी में उल्लेख आता है -

ररंकार खेचरी मुद्रा दसवाँ द्वार ठिकाना।

ब्रह्मा विष्णु महेश आदि ले ररंकार पहचाना ॥

इसका मतलब है त्रिकाल में जितने भी ऋषि-मुनि-पीर-पैगम्बर आदि हुए वे खेचरी मुद्रा में दसमद्वार तक गए।

आज तो लोगों ने दसम द्वार को एक मजाक बनाया हुआ है। नाना मत-मतांतर कह रहे हैं, दसवें द्वार की बात। सूरज-चाँद-तारे देखें वो भी कह रहे हैं दसवाँ दरवाजा खुल गया। नहीं भाई। दसवाँ द्वार एक अलग चीज़ है। अपने अंदर प्रकाश देखना, सूरज-चाँद-तारे देखना ये निचली बातें हैं, अन्य मुद्रा-शब्दों में आती हैं। लोग दसमद्वार की बातें कर रहे हैं, भेद नहीं मालूम है। मैं ऐसे लोगों से कहता हूँ क्या यह तुम्हारा अहंकार नहीं है; खुद से धोखा नहीं है। जो एक इंच भी अंदर की दुनिया में नहीं गए और इतना बड़ा अहंकार का बोझा ढोय-ढोय घूम रहे हो। मैंने गोष्टियाँ कीं तो दसमद्वार का रहस्य किसी ने नहीं बोला। बस इधर-उधर की बातें करके कहते हैं, गुप्त भेद है गुरु के बिना किसी से कहना नहीं है।

‘चंद साँसों पर रूका है ये ख्याले आसमां।’ यह देह श्वाँसा पर रूकी हुई है। पूरा करन्ट श्वाँसों द्वारा है। दस पवन, शरीर में दस मुकामों पर रह रही हैं, अपना काम कर रही हैं। पूरा खेल पवन का है। जब तक सभी पवनों को समेट कर इकट्ठा नहीं किया जाता, तब तक दसम द्वार खुलता नहीं है। मैंने बड़े-बड़े योगियों से इस पर संगोष्ठियाँ की हैं, उनको नहीं मालूम है। ज़्यादा से ज़्यादा वे कुम्भक-रेचक-पूरक क्रियायों तक ही जा रहे हैं। प्राणायाम तक ही जा रहे हैं। 6वें चक्र में या तीसरे तिल अथवा शरीर के किसी स्थान पर अपना ध्यान एकाग्र करके प्रकाश देख रहे हैं, इतनी ही हद है। साहिब वाणी में शीश से ऊपर अधर में पवन को पलट कर ले जाने की बात कह रहे हैं -

‘पवन को पलट कर शून्य में घर किया, घर में अधर भरपूर देखा। शून्य महल की फ़ैरी देई वो बैरागी पक्का होई।’ शून्य में जाएं कैसे? शून्य-आकाश दुनिया बोल रही है; शून्य का भेद कोई विरला जानता है। इसको साहिब ने ‘अधर आसन’ भी कहा है।

सकल पसारा मेट कर, मन पवना कर एक।

ऊँची तानों सुरत को तहँ देखो पुरुष अलेख॥

मैं दसम द्वार का रहस्य भर बोल रहा हूँ, ये क्रिया शुरू नहीं करना, हमारा लक्ष्य दसम द्वार नहीं है। गुरु के सानिध्य के बिना कोई योग क्रिया न करें। संसार में हम जितने भी कार्य कर रहे हैं उनमें एक मार्गदर्शक और गुरु की आवश्यकता पड़ती है।

‘संत’ तो ग्यारहवें दरवाजे का भेद जानने वाला, चौथे लोक का रमण करने वाला होता है। समस्त इन्द्रियाँ, मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार पर जिसका पूर्ण नियंत्रण है। ग्यारहवाँ दरवाजा खोल चुका है, वो है संत ‘सद्गुरु’। साहिब ने इस तरह ग्यारहवें द्वार का रहस्य दिया, चौंका दिया सबको। साधारण नहीं अमरलोक की बात कही, तीन लोकों से परे हटकर। पूरे समीकरण बदल दिये भक्ति क्षेत्र के। खलबली मच गई; लोगों के पुराने जितने व्यापार-धंधे थे धार्मिक, उन पर असर पड़ने लग गया। उन्होंने देखा

ओह! ये कबीर की शिक्षा का अनुकरण करने से लोग हमारी चाल में नहीं आएंगे। बादशाह सिकन्दर लोधी को भ्रमित किया, फिर शेख तकी को भ्रमित किया पण्डे-पुजारियों ने। बावन कसनी देनी पड़ीं साहिब को।

आपको सच बता रहा हूँ मेरी बातों की थोड़े समय में ही नक़ल होगी। मैंने बहुत से कथा वाचकों के समीकरण बदल दिये हैं, यह अहंकार से नहीं बोल रहा हूँ। उन्होंने मेरी लय में अभी बातचीत करना प्रारम्भ कर दिया है कई चीज़ें बदल-बदल कर। उनके पहले के प्रवचन देखना और मेरे प्रवचन के बाद के प्रवचन देखना तो आपको भिन्नता मिलेगी। नक़ल बड़ी जबरदस्त होती है।

साहिब ने एक सहज मार्ग की बात कही। कहा – भाई सद्गुरु पार कर देगा; तुम्हें कोई झंझट उठाने की ज़रूरत नहीं है। मैं कहता हूँ, नामदान तीन प्रक्रियाओं का समावेषण है। लोग सोचते हैं नामदान कोई ऐसा नाम है कि उसको कान में फूँक दिया, बस उसे जपना है।

‘अकह नाम गुरु बिन नहीं पावे, पूरा गुरु अकह समझावे।’ गुरु अपनी आध्यात्म ‘सुरति’ द्वारा, चेतन सुरति द्वारा मन और माया को अलग कर देता है। दूसरा – हृदय प्रकाशित कर देता है, आध्यात्म शक्ति द्वारा। जब ये हृदय प्रकाशित होता है तो आंतरिक विकारों की पहचान मिलती है। काम-क्रोध-लोभ-मोह आदि समझ में आने लगते हैं।

**नाम होय तो शीश नमावे, नहि तो ये मन बाँध नचावे।**

तीसरी बात; इस प्रक्रिया में एक पूर्ण सद्गुरु ‘नाम’ से आपके अन्दर अध्यात्मिक शक्ति जो परम सत्ता है उसको प्रगट कर देता है। ये तीन प्रक्रिया एक-साथ होना ही ‘नामदान’ है। ‘गुप्त नाम सो कहा न जाई, लिखा न जाई, पढ़ा न जाई। बिन सद्गुरु नाहीं कोई पाई।’ ...आदि शब्दों से साहिब ने इंगित किया कि जब तक सच्चे ‘नाम’ की प्राप्ति नहीं करते तब तक इस संसार सागर से किसी भी कीमत में पार नहीं हो सकते। इसलिये सहज मार्ग इसी कारण हुआ कि सुरति से ‘नाम’ देकर सद्गुरु स्वयं आपके अन्दर के सब काम कर देगा। सभी कार्य संचालित होते

जायेंगे। आप आश्चर्य करेंगे कि आपके अन्दर बदलाव कैसे आया। आप कैसे बदल गए, आपकी वृत्तियाँ कैसे बदल गई। आपने कोई साधना और ध्यान नहीं किया। पर, 'काग पलट हँसा कर दीन्हा।'

'जब लग सार नाम न पाये। तब लग जीव भव भटका खाये।' इन वाणी शब्दों से आपको आभास हो जाएगा कि एक पूर्ण गुरु आपके अन्दर पूरा बदलाव कर देता है। वाणी है -

सत्य शब्द पावै परवाना। सोई हँस वहाँ करत पयाना॥  
जो नहिं गहत शब्द सहिदानी। सो पुनि पौरे नर्क की खानी॥  
सुरति निरति ज्यों लौ लावा। सो हँसा जग बहुरि न आवा॥  
एही नाम सम्पूरन सही। एही नाम हँसा निर्वही॥  
मूलदीप तब नहीं निमासा। प्रथमहिं सुरति पुरुष प्रकाशा॥  
वही सुरति सब रचना कीन्हा। मूल शब्द हृदय धर लीन्हा॥  
और नाम बहुत कहै भाई। पुरुष नाम हँसा लपटाई।

यही शब्द दृढ़ कर गहो, कहे कबीर समझाई।  
अग्र विदेह नाम गहि, अग्र रूप हो जाई॥



चकिया सब रागन की रानी॥  
एक पट धरती चले, एक चले असमानी।  
काल निरंजन पीसन लागे सवालाख की धानी॥  
नो भी पिस गये दस भी पिस गये, पिस गये सहज अठासी।  
कथनी कथ कथ पिस गये भक्ता, भये गर्भ के वासी॥

# नाम कहां से आया

## जीवों को कष्ट दिये निरंजन ने

यम बाजी कोई चीन्ह न पाया। आशा दे यम जीव नचाया ॥  
 लख जीव नित प्रति खाई। महा अपरबल काल कसाई ॥  
 तप्त शिला निशि दिन तहँ जरड़। तापर लै जीवन कहँ धरड़ ॥  
 जीवहि जारे कष्ट दिलावे। तब फिर लै चौरासी नावे ॥

साहिब कह रहे हैं कि काल का खेल कोई नहीं समझ पाया, यह ऐसा भयानक कसाई है कि लाख जीवों को प्रतिदिन तप्त शिला पर भून-भून कर खाता है। जीवों को जलाकर कष्ट देकर फिर चौरासी की खानि में फेंक देता है।

जीव कीन्ह तब बहुत पुकारा। काल कष्ट देत अपारा ॥  
 यमकर कष्ट सह्यो न जाई। है कोई रक्षक करो सहाई ॥

ऐसे में जब काल जीवों को बहुत कष्ट दे रहा था तो जीवों ने पुकार की कि काल हमें बड़ा कष्ट दे रहा है, जो हमसे सहा नहीं जा रहा। यदि कोई रक्षक है तो हमें बचाओ!

## अमर लोक से साहिब चले

देख जीवन विकल अति, दया पुरुष जनाइया।  
 दयानिधि सत पुरुष साहिब, तबहिं मोहिं बुलाइया ॥  
 कहे मुहिं समुझाय बहु विधि, जीव जाय चितावहू।  
 तुम दरश ते हो जीव शीतल, जाय तपन बुझावहू ॥

जीवों की पुकार जब परम पुरुष के पास पहुँची तो वे दयाल हुए, कबीर साहिब कह रहे हैं कि तब उन्होंने मुझे बुलाया और समझाकर कहा कि जीवों को चिताकर ले आओ।



कर परनाम ज्ञानी चले, करन हंस को काज।  
जोपै काल न मानि है, तुम्हीं पुरुष को लाज॥  
परम पुरुष को प्रणाम कर जीवों के काम के लिए साहिब चल पड़े।

### निरंजन ने साहिब से बहस की

जबहिं पुरुष आज्ञा कीन्हा। जीवन काज पृथ्वी पग दीन्हा॥  
आवत मिल्यो धर्म अन्याई। तिन पुनि हमसो रार बढ़ाई॥  
मो कहँ देखि धर्म ढिग आवा। महा क्रोध बोले अतुरावा॥  
योगजीत इहँवा कस आवो। सो तुम हमसों वचन सुनावो॥  
परम परम की आज्ञा से जब साहिब आए तो रास्ते में निरंजन मिला,  
उसने क्रोधित होकर साहिब से पूछा कि यहाँ क्यों आए हो!

### निरंजन ने कहा

जाहु ज्ञानी घर आपने, मानो वचन हमार।  
तीन लोक पुरुषहिं दिये, स्वर्ग पताल संसार॥  
निरंजन ने कहा-हे ज्ञानी! वापिस अपने घर जाओ, यह संसार मेरा  
है, परम-पुरुष ने दिया है।

### साहिब ने कहा

मुहि जो पठयो पुरुष को, करन हंस के काज।  
कालहि मार संहारि हों, दीन्ह सकल मोहे साज॥  
साहिब ने कहा कि मुझे परम पुरुष ने जीवों के कल्याण के लिए  
भेजा है, तुझे मारने का सामान भी उन्होंने मुझे दिया है।  
तासों कह्यो सुनो धर्मराई। जीव काज संसार सिधाई॥  
तप्त शिला पर जीव जरावहु। जारि बारि निज स्वाद करावहु॥  
तुम अस कष्ट जीव कहँ दीन्हा। तबहि पुरुष मोहि आज्ञा कीन्हा॥

जीव चिताय लोक लै जाऊँ। काल कष्ट से जीव बचाऊँ ॥

ताते हम संसारहि जायब। दे परवाना लोक पठावब ॥

साहिब ने कहा कि तुम तप्त शिला पर जीवों को भून-2 कर खा रहे हो, उन्हें अपार कष्ट दे रहे हो, इसलिए परम पुरुष की आज्ञा से मैं यहाँ आया हूँ, जीवों को चिताकर अमर लोक ले जाऊँगा।

### निरंजन ने कहा

तबै निरंजन बोले बानी। कैसे हंस छुड़ावो ज्ञानी ॥

जग के माहिं कीन्ह हम बासा। पशु पंछी जल थल में आसा ॥

तिनसौ साठ हम पैठ लगाहीं। तामें सकल जीव उरझाहीं ॥

तापर काम क्रोध हम डारी। तृष्णा सकल जीव कहँ मारी ॥

तापर कीन्हों एक हम काजा। पाप पुण्य थापे हम राजा ॥

इनमें जीव बंधे सब झारी। कैसे हंसहि लेव उबारी ॥

निरंजन ने कहा कि जीवों को कैसे छुड़ा ले जाओगे! कहा-मैं ही सब में समाया हुआ हूँ। (मन रूप में निरंजन सबके अन्दर बैठा है) फिर तीन सौ ऐसे स्थान हैं, जहाँ मैंने पैठ लगायी हुई है, (360 ऐसे स्थान हैं जहाँ निरंजन ने थोड़ी-2 शक्तियाँ रखी हुई हैं, खुद बैठा हुआ है) सभी उनमें उलझे हैं, इस पर भी मैंने सबको काम, क्रोध, तृष्णा आदि से मारा हुआ है, बेहाल किया हुआ है। फिर मैंने पाप-पुण्य में जीवों को बाँध दिया है, तुम उन्हें कैसे छुड़ाओगे!

### साहिब ने कहा

सत्त शब्द हम बोले बानी। बचन हमारे छूटे प्राणी ॥

गहै शब्द जब मन चित्तलाई। भजिहै काल जिव लेब छुड़ाई ॥

साहिब ने कहा कि मैं सत्य कह रहा हूँ, जब जीव मेरे शब्द को पकड़ लेगा, वो छूट जायेगा।

### निरंजन ने कहा

तबै निरंजन बोले बानी। सकल जीव बस हमरे ज्ञानी॥  
 तिनसौ साठ पैठ उरझेरा। कैसे हंसन लेव उबेरा॥  
 गंगा जमुना सरसवती जानी। पुष्कर गोदावरी मानी॥  
 बद्री केदार हमका ठाऊँ। जहाँ तहाँ हम तीरथ लगाऊँ॥  
 सेतु बन्ध पुनि कीन्ह ठिकाना। पुष्कर क्षेत्र आय हम थाना॥  
 गढ़ गिरनार दत्त को थाना। ताहि घर हम बैठे निहाना॥  
 कमरू माह कमच्छा देवी। नीमखार मिसरख जम लेवी॥  
 नगर अयोध्या रामहिं राजा। खैहैं दड़त बाँध सब साजा॥  
 याही पैठ जग जीव भुलाई। किहिं विधि हंस लेव मुकताई॥

निरंजन ने कहा कि बड़े स्थान हैं, जहाँ जीव भ्रमित है। गंगा, यमुना, गोदावरी, मथुरा, बद्रीनाथ, केदार, अयोध्या, पुष्कर आदि जगहों पर बैठ मैंने जीवों को भुलाया हुआ है, फिर किस विधि से तुम उन्हें छुड़ाओगे!

### साहिब ने कहा

तब ज्ञानी अस बोले बानी। जमते जीव छुड़ावहुँ आनी॥  
 पुरुष नाम को कहूँ समुझाई। जम राजा तब छोड़ पराई॥  
 घाट-घाट बैठे उरझेरा। हमरे शब्द ते होय निबेरा॥  
 सुन रे काल दुष्ट अन्याई। शब्द सग हंसा घर जाई॥

साहिब ने कहा—हे निरंजन! मैं परम पुरुष का नाम दूँगा, यम का जोर फिर उन पर नहीं चलेगा, तुम स्थान-2 पर बैठे उन्हें भ्रमित कर रहे हो, मेरे शब्द से वे छूट जायेंगे, शब्द उन्हें अपने साथ अमर लोक ले जायेगा।

### निरंजन ने कहा

का ज्ञानी देहो अधिकारा। हमरो नहिं छूटे यम जारा॥  
 पाँच पचीस तीन गुन आही। यह लै सकल शरीर बनाई॥

तामें पाप पुण्य को वासा। मन बैठा ले हमरी फाँसा॥

जहाँ तहाँ जग भरमावै। ज्ञान संधि कछु रहन न पावै॥

एक शब्द की कैतक आशा। मेरे हैं चौरासी फाँसा॥

निरंजन ने साहिब से कहा कि तुम जीवों को मुझसे छुड़ाकर ले ही नहीं जा सकते, मैंने पाँच तत्वों से शरीर की रचना की और 84 लाख फंदे बनाए हैं। उस पर फिर पाप-पुण्य में जीवों को बाँधा हुआ है। मन रूप में मैं सबके अन्दर समाया हुआ हूँ, किसी को सोचने भी नहीं देता हूँ कि क्या माजरा है, तुम्हारा एक शब्द क्या कर लेगा, मैंने चौरासी लाख योनियों में जीव को उलझाया हुआ है।

### साहिब कहते हैं

बोले ज्ञानी शब्द बिचारी। छूटे चौरासी की धारी॥

छूटे पाँच पचीस गुण तीनों। ऐसा शब्द पुरुष मैं दीन्हों॥

साहिब ने कहा कि मेरे पास बड़ा जबरदस्त नाम है, जिन्हें परम पुरुष का अकह नाम (शब्द) दे दूँगा, उनका तुम कुछ नहीं बिगाड़ पाओगे। वो जीव तुम्हारे फंदे से आजाद हो जायेगा।

### निरंजन ने कहा

हे ज्ञानी का करो बड़ाई। हमते नाहिं छूट जिव जाई॥

इसने युग भये का तुम देखा। ज्ञानी हंस न ऐको पेखा॥

का तुम करो का शब्द तुम्हारा। तीन लोक परलय कर डारा॥

साधु संत हम देखी रीती। परलय परे सकल जग जीती॥

करम रेख बाँधै सब साधा। सुर नर मुनि सकलो जग बाँधा॥

निरंजन ने कहा कि इतने युग हो गये, क्या एक भी जीव को सतलोक आते देखा। बड़ी ताकत से मैंने जीव को बाँधा हुआ है, छुटने नहीं दूँगा, तुम और तुम्हारा शब्द क्या कर लेगा, मैं तीन लोक का नाश कर देता हूँ। निरंजन ने कई बार सृष्टि का प्रलय भी किया है। प्रलय

करना, यह सब काम साहिब के नहीं हैं, परम पुरुष के नहीं हैं। इस पर साहिब ने कहा भी है—जो रक्षक तहँ चीह्नत नाहिं, जो भक्षक तहँ ध्यान लगाहीं। आगे निरंजन ने कहा कि इस पर भी मैंने पाप पुण्य में जीव को बाँधा हुआ है, आम आदमी की बात ही क्या है, सुर, नर, मुनि सारे संसार को बाँधा हुआ हूँ। एक भी जीव को जाने नहीं दूँगा। निरंजन ने साहिब से यह कहा। अब साहिब कह रहे हैं।

### साहिब कहते हैं

ज्ञानी कहै काल अन्यायी। शब्द बिना तू खाय चबाई ॥

अब तुम कस खैहो बटसारा। पुरुष भाषों विश्वासा ॥

सुभ अरू असुभ का करे निबेरा। मेटो काल सकल उरझेरा ॥

साहिब ने कहा—हे निरंजन! इसलिए तो मैं आया हूँ, तुमने एक भी जीव को सतलोक नहीं आने दिया। पहले इनके पास में सच्चा नाम नहीं था, ये अपने जोर से पार होना चाहते थे..... तुमने खा लिया। पर अब मैं परम पुरुष का बड़ा ज़बरदस्त नाम दूँगा, और तुम्हारा बस अब जीव पर नहीं चलने दूँगा, अन्दर से विश्वास भी नाम उन्हें देता जायेगा। शुभ और अशुभ का ज्ञान भी अन्दर से होता जायेगा, नाम जीव को पूरी सुरक्षा देता चलेगा और तुम्हारे सब बंधनों से छुड़ाकर अमर लोक ले जायेगा। साहिब ने एक अन्य स्थान पर भी कहा है—सुमिरन पाय सत्य जो वीरा, संग रहूँ मैं दास कबीरा।

### निरंजन ने कहा

निरगुन काल तब बोले बानी। उरझे जीव सकल जम खानी ॥

कैसे के तुम शब्द पसारो। कौने विधि तुम जीव उबारौ ॥

ऐसे जीव सकल हैं करनी। कैसे पहुँचै पुरुष की सरनी ॥

जग में जीव क्रोध विकरारा। कैसे पहुँचै पुरुष के द्वारा ॥

क्रोधी जीव प्रेत अभिमानी । धरिहैं जन्म नरक की खानी ॥  
 लोभ होय सरप विकरारा । माटी भखे जीव अधिकारा ॥  
 लोभ जन्म सूकर अवतारा । कैसे पावै मोक्ष को द्वारा ॥  
 विषई विषै सब विष की खानी । ऐ सब कहिये जम सहिदानी ॥

निरंजन ने कहा कि मैंने काम, क्रोध आदि में जीव को फँसाया हुआ है । ऐसे में तो कोई भी जीव परम पुरुष के लोक में नहीं पहुँच सकता । इस पर भी यम के 14 दूत मैंने हरेक में फिट किये हुए हैं, तुम उन्हें कैसे निकालोगे ! प्रत्येक आदमी के भीतर यम के 14 दूत बैठे हुए हैं । एक का काम है—नींद लाना, एक का काम है—विषयों को दिल में उत्पन्न करना, एक का काम है—मौज करना । जिससे जीव मौज करता है । एक का काम है—चित्त भंग कर देना । इसका नाम है—चित्तभगा, आदि ये यम के 14 दूत हैं, जो जीव को भ्रमित कर रहे हैं । इनके साथ काम, क्रोध आदि भी जीव पर छाए हुए हैं । विषयों में जीव को उलझा दिया है । जीव बड़ा गंदा हो गया है, तुम्हारे शब्द को कोई नहीं मानेगा ।

### साहिब ने कहा

ज्ञानी कहै करहु वरियारा । हमतो कीन्ह सकल निरबारा ॥  
 जोई ज्ञानी होय हमारा । काम क्रोध ते होय नियारा ॥  
 तृस्ना लोभहि देई बहाई । विषै जन्म सब दूर पराई ॥  
 उनको ध्यान शब्द अधिकारी । काम क्रोध सब होय नियारी ॥  
 नाम ध्यान हंस घर जाई । क्या रे काल तुम करो बड़ाई ॥  
 उनमें यम का परै न छाहीं । ताते हंसा लोकहि जाई ॥

साहिब ने कहा कि जिस शरीर में यह नाम दे दूँगा, तेरा जोर उसमें नहीं चलेगा । वहाँ काम, क्रोध निकट नहीं आयेंगे और वो जीव निर्मल हो जायेगा, तुम उस जीव को छू भी नहीं पाओगे और वो जीव हंस रूप होकर अपने देश में चला जायेगा ।

### निरंजन ने कहा

कहे निरंजन सुन हो ज्ञानी । कथि हा जान तुम्हारी बानी ॥  
युगत महात्म सबै बताऊँ । तुम्हारा नाम ले पंथ चलाऊँ ॥

अब निरंजन अपनी जगह आया । उसने कहा, मैं भी तुम्हारा नाम लेकर पंथ चलाऊँगा और जीवों को उलझा दूँगा । किसी को पता नहीं चलेगा कि सच क्या है और झूठ क्या है । यानी उसने कहा कि मैं नाम अपने वाला दूँगा और उस पर मोहर तुम्हारी होगी । इसलिए आज दुनिया में जीव उलझन में है, पता नहीं चल पाता है कि इतने नामों में से कौन-सा नाम सच्चा है और वो किसके पास है ।

### साहिब ने कहा

कहे ज्ञानी सुन काल विचारा । हंस हमार नहिं न्यारा ॥  
निसवासर रहै लौ लीना । शब्द विचार होय नहीं भीना ॥  
हंस हमारा शब्द अधिकारा । पुरुष परताप को करे सम्हारा ॥  
नाम जपै अरू सुरत लगाई । मिले कर्म लागे नहीं काई ॥  
शब्द मानि होय शब्द सरूपा । निश्चय हंसा होय अनूपा ॥  
साहिब ने कहा-हे निरंजन ! जिसे सच्चा नाम मिल जाएगा, वो निर्मल हो जाएगा, फिर वो तुम्हारी तरफ़ जाएगा ही नहीं ।

### निरंजन ने कहा

ज्ञानी मोर अपर बल ज्ञाना । वेद किताब भरम हम माना ॥  
इनको माने सब संसारा । कलि में गंगा मुक्ति द्वारा ॥  
देही दान से उतरे पारा । ऐसे सुमृत कहें विचारा ॥  
यह विधि जग जीव भुलाहीं । जरा मरन सब बंध बंधाहीं ॥  
सूतक पातक वेद विचारा । पूछ वेद से करहि संहारा ॥  
एकादशी मुक्ति को भाई । योग जग्य करवे अधिकाई ॥

निरंजन ने कहा कि मैंने सूतक, पातक, कर्मकाण्ड आदि अनेक वहमों में जीवों को उलझाया हुआ है, सब इन्हीं को मानते हैं, तुम्हारी बात कोई मानेगा ही नहीं, इसलिए मत जाओ दुनिया में।

### साहिब ने कहा

सुनहु काल ज्ञान की संधी। छोरो जीव सकल की फंदी॥  
जब निज बीरा हंसा पावै। जोग बरत तप सबै नसावै॥  
वेद किताब की छोड़े आसा। हंसा करे शब्द विस्वासा॥  
ताके निकट काल नहिं आवे। निज बीरा जो सुरत लगावे॥  
जोग बरत पतहू है छारा। अद्भुत नाम सदा रखवारा॥

साहिब ने कहा कि जिसे सच्चा नाम मिल जाएगा, उसका सारा वहम अन्दर से धुल जाएगा, काल भी उसके निकट नहीं आ पाएगा। नाम सदा उसकी रक्षा करेगा।

### निरंजन ने कहा

अब तुम ज्ञानी भली सुनाई। मेरो उरझो सुरझो नहिं जाई॥  
पावै शब्द होय अभिमानी। कैसे लोक जाहिं प्रानी॥  
सब्द पाय कर चले न राहा। ज्ञानी कहाँ मुक्ति की थाहा॥

निरंजन ने कहा कि मैंने जो उलझनें डाली हुई हैं वे सुलझेंगी ही नहीं, जीव नहीं समझेगा, यदि तुमने अपना शब्द दे भी दिया, तो भी जीव अहंकार में रहेगा, तुम्हारे नियमों पर नहीं चलने पायेगा, फिर मुक्ति कैसे मिलेगी!

### साहिब ने कहा

तब ज्ञानी बोले मुख बानी। सुनियो काल निरंजन आनी॥  
हंसा भक्ति जो करे हमारी। राखो सदा सब्द निज धारी॥  
काम क्रोध अहंकार बिकारा। इनको तजिहैं हंस हमारा॥  
पहुँचे हंस पुरुष दरबारा। अरे काल तोको तज डारा॥



साहिब ने कहा कि जो नाम पाकर मेरी भक्ति करेंगे, वे काम, क्रोध आदि छोड़ देंगे और तुम्हारी दुनिया को त्याग परम पुरुष के दरबार में पहुँच जायेंगे।

### निरंजन ने कहा

निरंजन बोले गरब सो भाई। मोरे फंद तोर को जाई॥  
 करम जंजीर बाँधा संसारा। जोई हम जग जाल पसारा॥  
 तीन लोक जोड़न औतारा। आवागमन में फिर फिर पारा॥  
 उपजै विनसै रहै भुलाई। देव रिषी मुनि सकलो खाई॥  
 सिद्ध साधु अरु बड़े जु ज्ञानी। बाँध बाँध कर तोपि समानी॥  
 करम रेख ते कोई न न्यारा। तीन देव सुर असुर पसारा॥

निरंजन ने बड़े घमण्ड से कहा कि मेरे फंदे को तोड़कर कौन जा सका है, मैंने कर्म की जंजीर से सारे संसार को बाँधा हुआ है, क्या ऋषि, क्या मुनि, क्या सिद्ध, क्या साधु, क्या देवता, त्रिदेव आदि सबको कर्म जाल में उलझाकर बार-बार खा जाता हूँ, कोई भी कर्म से न्यारा नहीं है।

### साहिब ने कहा

कहै ज्ञानी सुन काल लबारा। करिहीं टूक जंजीर तुम्हारा॥  
 हंसन लैहों तुरत उबारी। पुरुष शब्द दीन्हों मोहि भारी॥

साहिब ने कहा—हे झूठे ! तेरी कर्म की जंजीर को भी तोड़ दूँगा, परम पुरुष ने मुझे ऐसा जबरदस्त नाम दिया है कि कर्म जाल से भी जीव को छुड़ा लेगा।

क्रोधित निरंजन साहिब पर झपटा  
 और असली रूप में आए साहिब

यह सुन काल भयंकर भयऊ। हम कहँ त्रास दिखावन लयऊ॥  
 सत्तर युग हम सेवा कीन्ही। राज बड़ाई पुरुष मुहिं दीन्ही॥

फिर चौंसठ युग सेवा ठयऊ। अष्टंगी पुरुष हम दयऊ॥  
 तब तुम मारि निकारे मोहि। योगजीत नहिं छाड़ों तोहिं॥  
 अब हम जान भली विधि पावा। मारों तोहि लेउँ अब दावा॥  
 गरजे काल महा बिकराला। सत्रह लाख लो पाँव पसारा॥  
 लपकै जीभ जिमि टूटे तारा। जिमि बिजली चमकै आँधियारा॥  
 सूढ़ बढ़ाय दंत अति बाढ़ा। मध्य घेर ज्ञानी कहँ ठाढ़ा॥  
 हमरे पौरुष हम बरियारा। तुम ज्ञानी का करो हमारा॥

यह सुन निरंजन क्रोधित हो गया, साहिब को भय दिखाने लगा, कहा कि परम पुरुष की सेवा करके मैंने तीन लोक का राज्य और अष्टंगी को प्राप्त किया, पर तब तुमने मुझे मानसरोवर से निकाल दिया, इसलिए अब मैं तुमसे बदला लूँगा, तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। निरंजन ने तब विकराल हाथी का रूप धारण किया और सूँढ़ और दाँत बढ़ाकर साहिब को बीच में घेर लिया, कहा—हम बड़े बलवान हैं, तुम हमारा क्या करोगे!

ज्ञानी पुरुष शब्द कियो जोरा। पकड़ सूँढ़ दाँत गहि मोरा॥  
 मारेउ सब्द पाँव कर पेली। तोर सूँढ़ समुद्र गहि मेली॥  
 पुरुष रूप तबहीं पुन धारा। जौन सूरूप सकल औतारा॥

साहिब ने कहा कि तब वहाँ मैंने परम पुरुष का रूप धारण किया, अपने मूल रूप में आया, उस पर सुरति फेंकी, उसके दाँत तोड़ दिये और उसकी सूँढ़ पकड़ उसे समुद्र में फेंक दिया।

### निरंजन अधीन हुआ

भया अधीन दोई कर जोरी। तुम सतपुरुष सरन हम तोरी॥  
 प्रथम ज्ञानी हम नहिं जाना। बन्धु जान कीन्हा अभिमाना॥  
 तुमसो बल बुद्धि हम धारा। अब तुम करहु मोर उद्धारा॥  
 मैं साहिब तुमको नहिं चीन्हा। सतपुरुष तुम दरसन दीन्हा॥  
 दोइ कर जोरि चरण चित लावा। धन्य भाग हम दरसन पावा॥

तब निरंजन अधीन हुआ और दोनों हाथ जोड़कर कहा कि मैं आपकी शरण में हूँ, आप तो स्वयं सत्पुरुष हैं, मैंने भाई जानकर आपसे युद्ध किया, आपको पहचाना नहीं, आपसे ही बल और बुद्धि का प्रयोग किया, इसलिए क्षमा करें। मेरा बड़ा भाग्य है कि आपने आज मुझे दर्शन दिये।

### साहिब ने कहा

सुन रे काल निरंजन राई। पुरुष नाम जो बीरा पाई॥

ताको खूँट गहो मत लाई। सो हंसा मेरे लोकहि आई॥

साहिब ने कहा कि हे निरंजन! जिसे नाम मिल जाएगा, उसे तुम नहीं पकड़ोगे, वो मेरे देश में आएगा।

### निरंजन ने कहा

सुनो गुसाईं विनती मोरी। नाम पाय करै कछु औरी॥

ज्ञान कथै अनत चित वासा। आवागमन की राखै आसा॥

निरंजन ने कहा कि जो नाम पाकर ग़लत चलें, नियमों का पालन न करें, आवागमन की इच्छा रखें, उनका क्या होगा, क्या वे भी पार होंगे!

### साहिब ने कहा

सुनो निरंजन बचन हमारा। नहीं सत्त वह जीव तुम्हारा॥

तब साहिब ने वहाँ निरंजन से करार किया कि नहीं, उसे तुम ले जाना, वो जीव तुम्हारा हो जाएगा।

### निरंजन ने कहा

दयावन्त तुम साहिब दाता। एतिक कृपा करो हो ताता।

पुरुष शाप सो कहँ अस दीन्हा। लच्छ जीव नित ग्रासन कीन्हा॥

तुमहू कृपा मो पर करहू। माँगो सो वर मुहि उच्चरहू॥

सतयुग त्रेता द्वापर माहीं। तीनहु युग शरण जीव थोरे जाहीं॥

चौथा युग जब कलियुग आवे। तब तुव शरण जीव बहु जावे॥

ऐसा वचन हार मुहिं दीजे। तब संसार गवन तुम कीजे॥

निरंजन ने कहा कि एक कृपा करो, परम पुरुष ने मुझे एक लाख जीव रोज़ खाने का शाप दिया है, इसलिए मुझे कृप्या एक वर दो कि सतयुग, त्रेता और द्वापर युग में आप थोड़े-2 जीव ही ले जायेंगे और जब कलयुग आयेगा तो बहुत सारे जीव ले जाना।

### साहिब ने कहा

अरे काल परपंच पसारा। तीनों युग जीवन दुख डारा ॥  
 विनती तोरि लीन्ह मैं जानी। मो कहँ ठग काल अभिमानी ॥  
 जस विनती तू मोसन कीन्ही। सो अब बकसि तोहि कहँ दीही ॥  
 चौथा युग जब कलयुग आये। तब हम आपन अंश पठाये ॥

साहिब ने कहा कि तूने षड्यन्त्र रचकर तीन युग जीवों के लिए दुखदायी कर दिये, पर तुमने विनती की, इसलिए मैंने तुम्हें माफ़ कर तुम्हारी विनती मान ली, पर जब कलयुग आयेगा, तो मैं अपने अंश भेजूँगा।

**अंश ब्यालिस पुरुष के, जीव कारण आवई।**

**कलि पंथ प्रगट पसारि के, वे जीव लोक पठावई ॥**

कहा- परम पुरुष के ब्यालिस अंश जीवों के कल्याण हेतु आयेंगे और अपना पंथ चलाकर जीवों को अमर लोक ले जायेंगे।

### निरंजन ने कहा

वचन तुम्हार लीन्ह मैं मानी। विनती एक करों तुहि ज्ञानी ॥  
 पंथ एक तुम आप चलाऊ। जीव लै सत लोक पठाऊ ॥  
 द्वादस पंथ करों मैं साजा। नाम तुम्हार ले करों अवाजा ॥  
 द्वादश यम संसार पठैहों। नाम तुम्हार पंथ चलैहों ॥  
 प्रथम दूत प्रगटे मम जायी। पीछे अंश तुम्हारा आयी ॥  
 द्वादश पंथ जीव जो ऐहैं। सो हमरे मुख आन समैहैं ॥

निरंजन ने कहा कि आपका कहा मैंने मान लिया, पर एक विनती है कि आप अपना एक पंथ चलाकर जीवों को अमर लोक ले जाना और मैं अपने 12 पंथ चलाकर जीवों को भटकाऊँगा। 12 यम मैं संसार में

भेजूँगा, वे आपका नाम लेकर मेरा पंथ चलायेंगे और जो जीव उन पंथों में आ जायेंगे, वे मेरे मुख में ही समायेंगे यानी उन्हें मैं खा जाऊँगा।

### साहिब ने कहा

धर्म जस तुम माँगहू सो, चरित्र हम भल चीन्हिया ॥  
 पंथ द्वादश तुम कहे उसो, अमी घोर विष दीन्हिया ॥  
 जो मेटि डारों तोहि को अब, पलटि कला दिखावऊँ ॥  
 लै जीवबंद छुड़ाय यमसो, अमर लोक सिधावऊँ ॥  
 पुरुष वचन अस नाहिं, यहै सोच चित कीन्है ॥  
 लै पहुँचावहुँ ताहि, सत्य शब्द जो दृढ़ गहे ॥

साहिब ने कहा कि मैंने तुम्हारी चालाकी जान ली है, जो तुम माँग रहे हो। अपने 12 पंथ चलाकर अमृत में विष घोल देना चाहते हो। यदि तुमने अब कोई खेल दिखाया तो तुम्हें मिटा दूँगा और सब जीवों को छुड़ाकर अमर लोक ले जाऊँगा, पर अफसोस! परम पुरुष की ऐसी आज्ञा नहीं है, इसलिए जो जीव मेरे नाम को दृढ़ता से पकड़े रहेंगे, उन्हें ही मैं अमर लोक ले जाऊँगा।

### निरंजन ने कहा

कहे धर्म जाओ संसारा। आनहु जीव नाम अधारा ॥  
 जो कोई जैहैं शरण तुम्हारा। हम सिर पग दै होवे पारा ॥

निरंजन ने कहा कि ठीक है, अब संसार में जाओ और जीवों को नाम के सहारे ले जाओ, जो कोई आपकी शरण में आयेगा, वो मेरे शीश पर पैर रखकर पार हो जायेगा।

### साहिब आये संसार में

धर्मराय उठ सीस नवायो। तबहिं हम संसार सिधायो ॥

निरंजन ने तब उठकर साहिब को प्रणाम किया और साहिब संसार में आए।

आये जहाँ यम जीव सतावे। काल निरंजन जीव नचावे॥  
 चटपट करे जीव तहाँ भाई। ठाढे भये तहाँ पुनि जाई॥  
 मोहि देख जीव कीन्ह पुकारा। हे साहिब मुहि लेहि उबारा॥  
 तब हम सत्य शब्द गुहरावा। पुरुष शब्द ते जीव जुड़ावा॥

साहिब तप्त शिला पर आए, जहाँ निरंजन जीवों को कष्ट दे रहा था, भून-2 कर खा रहा था। साहिब को देख जीवों ने पुकार की कि हमें छुड़ाओ। तब साहिब ने सत्य शब्द पुकारा, जिससे तप्तशिला ठण्डी हो गयी, जीव शांत हो गये।

सकल जीव तब अस्तुति लाये। धन्य पुरुष भल तपन बुझाये॥

यम ते छोर लेव तुम स्वामी। दया करो प्रभु अन्तरयामी॥

सब जीवों ने साहिब से पुकार की, कहा-हे प्रभु! हमें छुड़ाओ।

तब मैं कहा जीव समुझाई। जोर करो तो वचन नसायी॥

जब तुम जाय धरौ जग देहा। तब तुम करिहो शब्द सनेहा॥

देह धरी सत शब्द समाई। तब हंसा सत लोकै जाई॥

जहाँ आशा तहाँ वासा होई। ताको टार सका न कोई॥

जब तुम देह धरो जग जायी। बिसर्यो पुरुष काल धरि खाई॥

साहिब ने कहा कि यदि ऐसे ही जबरन ले जाऊँगा तो मेरा शब्द कट जाएगा, जो निरंजन को दे चुका हूँ, इसलिए जब तुम मानव तन में जाओगे तो मेरे शब्द से प्रीत करना, जिस देही में मेरा नाम आ जायेगा, वो सतलोक चला जायेगा। साहिब ने कहा-जहाँ आशा होगी, वहीं वास होगा, तुमने परम पुरुष को भुला दिया, इसलिए काल पुरुष ने तुम्हें खा लिया।

**जीवों ने कहा**

कहे जीव सुन पुरुष पुराना। देह धरी विसर्यो यह ज्ञाना॥

पुरुष जान सुमरेउ यमराई। वेद पुराण कहे समुझाई॥

वेद पुराण कहे मत एहा। निराकार ते कीजे नेहा॥

सुर नर मुनि तैतीस करोरी। बाँधे सबै निरंजन डोरी॥

जीवों ने कहा कि हे साहिब ! मनुष्य तन में जाकर हमें ज्ञान नहीं रहा, हम भूल गये, काल को ही परम पुरुष जानकर पूजने लगे, क्योंकि वेद पुराण आदि भी इसी निराकार की भक्ति करने को कह रहे हैं, सुर, नर, मुनि, 33 करोड़ देवता आदि सभी निरंजन को मान रहे हैं ।

### साहिब ने कहा

सुनो जीव यह छल यम कैरा । यह यम फंदा कीन्ह घनेरा ॥

साहिब ने कहा कि काल ने ही यह जाल फैलाया है ।

काल कन्या अनेक कीन्हे, जीव कारण जाल हो ।

तीरथ व्रत जग योग फन्दे, कोई ना पावत बाट हो ॥

देह धरि नर परगट हो, फिरि ताहि आशा कीन्हेऊ ॥

भरमत इत उत काल बस, बहु पुण्य में चित दीन्हेऊ ॥

काल और माया ने जीवों को फँसाने के लिए तीर्थ, योग, यज्ञ, तप आदि के अनेक जाल बनाए हैं, अनेक फंदे बनाए हैं, कोई भी सच्चा रास्ता नहीं पा रहा है । नर तन पाकर जीव काल की ही आशा में इधर उधर भटकते हुए पुण्य कर्मों में उलझ रहे हैं ।

### धर्मदास ने पूछा

धर्मदास अस विनती लायी । ज्ञानी मोहि कहो समझायी ॥

जो कछु पुरुष शब्द मुख भाखो । सो साहिब मोहि गोय न राखो ॥

कौन शब्द ते जीव उबारा । सो साहिब सब कहो बिचारा ॥

धर्मदास जी ने साहिब से पूछा कि परम पुरुष ने वो कौन-सा शब्द पुकारा, जिसे लेकर आप इस संसार में आए, और जिससे आप जीवों का कल्याण करते हैं !

## गुप्त वस्तु है नाम साहिब ने कहा

पुरुष मोहि जैसो फुरमायी । सो सब तुमसों संधि लखायी ॥  
 येहेउ मोहि बहु विधि समझायी । जीवहि आनो शब्द चितायी ॥  
 गुप्त वस्तु प्रभु मो कहँ दीन्हा । नाम विदेह मुक्ति कर चीन्हा ॥  
 दीन्ह पात परवाना हाथा । संधिछाप मोहि सौँप्यो नाथा ॥  
 बिनु रसनाते सो धुनि होई । गुरुगम ते लखि पावे कोई ॥  
 पंच अमीय मुक्ति का मूला । जातें मिटे गर्भ अस्थूला ॥  
 यहि विधि नाम गहे जो हंसा । तारौ तासु इकोत्तर बंसा ॥  
 नाम डोरि गहि लोकहि जायी । धर्मराय तिहि देखि डरायी ॥  
 ज्ञानी करो शिष्य जेहि जाई । तिनका तोरो जल अँचवाई ॥  
 जिहि विधि दीन्ह तुमहि मैं पाना । तेहि विधि देहुँ शिष्य सहिदाना ॥

साहिब ने कहा कि परम पुरुष ने मुझे जैसा कहा, सो मैं तुमसे कहता हूँ। उन्होंने मुझे कहा कि शब्द से जीवों को चिताकर ले आओ। उन्होंने मुझे गुप्त वस्तु दी, विदेह नाम दिया; उसमें बिना मुख के आवाज़ (Sound Less Sound) होती है। गुरु-कृपा से कोई ही उसे देख पाता है। जो उस नाम को विश्वास के साथ पकड़े रखता है, मैं उसके 71 वंश तारता हूँ। नाम की डोरी से ही जीव उस लोक में जाता है और ऐसे जीव को देख काल भी डर जाता है।



अमर लोक इक अजर दब । हृद अनहद के पार खूब ॥  
 चढ़ि कर देखौ सुरति साग । जो कोई निरखे बड़े भाग ॥  
 सत्य लोक जहँ पुरुष विदेही । वह साहिब करतारा ॥  
 आदि जोत और काल निरंजन । इनका वहाँ न पसारा ॥  
 संतों            सो            निज            देश            हमारा ॥  
 जहाँ जाय फिर हंस न आवै भवसागर की धारा ॥



भृग मता होये जिहि पासा ।  
सोई गुरु सत्य धर्मदासा ॥

जो आपको कह रहा है कि कुछ कर, कमाई कर, समझना कि वो संत नहीं है, संत वेश में कोई पाखण्डी है, जिसे यथार्थ ज्ञान कुछ भी नहीं है, केवल किताबों से पढ़कर सुना रहा है। संत तो सक्षम होता है, पर वो अक्षम है; संत आँखों देखी वाली बात करता है, वो किताबों वाली बात कर रहा है; संत यथार्थ में अमर-लोक से होकर आते हैं, उसने कभी अमर-लोक सपने में भी नहीं देखा है। यदि सपने में भी देखा होता तो जान जाता कि अपनी ताकत से नहीं देखा, कोई दिखा गया। यह पक्की बात है कि सपने में भी अमर-लोक नहीं देखा जा सकता है। फिर वहाँ पहुँचना तो बड़ी दूर की बात है। इसलिए जिसके पास भृग मते वाली थ्युरी नहीं है, वो आपका बहुत बड़ा बैरी है, क्योंकि आपको धोखे में रखे हुए हैं। इस बात को अपने दिल में गहराई से उतार लेना कि वो आपका सर्वनाश करने पर तुला है, जो कह रहा है कि कुछ कमाई कर, कुछ साधना कर, तभी कुछ होगा। क्योंकि उस पाखण्डी को पता नहीं है कि—

सन्त-मत में शीश पर हाथ रखकर नाम दिया जाता है। कोई कहता है कि हमें गुरु जी ने माइक पर नाम दिया, कोई कहता है कि टी. वी. पर दिया। नहीं, नाम ऐसे नहीं दिया जाता। एक ने मुझसे भी पूछा कि यदि आपको हज़ार आदमी को एक साथ नाम देना पड़ेगा तो क्या तब भी ऐसे ही शीश पर हाथ रखकर देंगे? मैंने कहा कि यदि एक लाख आदमी को भी नाम देना पड़ा तो ऐसे ही दूँगा, क्योंकि नाम देने की विधि ही यही है। वो ऐसे ही दिया जाता है। यही सिस्टम है नाम का क्योंकि वो किरणें शिष्य को प्रदान करनी हैं।

# एक नाम खोजो चितलाई

सत्यपुरुष 'आत्म' रूप में सब जीवों में व्याप्त होकर भी सबसे न्यारा है। वो अगम हैं, अपार हैं। उसे संसारी लोग नहीं जानते; क्योंकि उस परमपुरुष की भक्ति को जानना ही निज-सार को जानना है। एक सद्गुरु ही निज सार-शब्द की सुरति देकर भवसागर के पार उतारने वाले हैं। उस अगम-अपार अमरलोक को पाने वाली हँसात्मा फिर जन्म नहीं लेती। संसारी लोग त्रिलोक के स्वामी काल निरञ्जन को ही अगम-अपार मानकर भक्ति कर रहे हैं। निरञ्जन की दुनिया में जन्म-मरण की चार-मुक्तियों को जान रहे हैं।

भक्ति पदारथ अगम फल, मुक्ति चार यहि बार।

पावै पूरण पुरुष को, जग नहिं ले अवतार॥

'मन' रूप पुरुष (निरञ्जन) को कबीर साहिब जी सत्यपुरुष नहीं कह रहे हैं, क्योंकि ब्रह्माण्डों में (भूमि पर) वही अवतरित है। 'मन' ही सब में समाया है। जीवों के सृष्टि में जितने भी नाम हैं सभी माया के नाम हैं 'मन' के अक्षर-शब्द हैं। 52 अक्षरों में आने वाले नाम हैं। कह रहे हैं परमपुरुष में समाया परम 'शब्द' संसारी नामों वाला शब्द नहीं है।

पुरुष कहो तो पुरुषहि नाहीं। पुरुष हुआ आपा भूमाही॥

शब्द कहो तो शब्दहि नाहीं। शब्द होय माया के छाहीं॥

साहिब तब का 'शब्द' कह रहे हैं, जब पृथ्वी पाताल और आकाश नहीं थे। जब कूर्म, बराह और शेषनाग नहीं थे। जब आद्यशक्ति, गौरी-पार्वती और गणेश उत्पन्न नहीं थे, पर वो परमलोक और उसमें समाया परमशब्द था। जीवों को बँधन में रखकर भुलाने वाला कालपुरुष 'निरञ्जन' भी नहीं था, ब्रह्मा-विष्णु-महेश, वेद-शास्त्र-पुराण, देवियाँ और 33 करोड़ देवता नहीं थे। क्योंकि तब ये सभी परमपुरुष में उसी तरह समाय हुए थे

जैसे वट-वृक्ष में छाया समाई रहती है। साहिब ने अनेक भाँति समझाया कि मनुष्य देह पाई है तो सद्गुरु से सत्यनाम ग्रहण कर लो; उस अकह 'नाम' के प्रताप से 'आत्मा' को निज घर प्राप्त हो जायेगा। कह रहे हैं -

बहुत भाँति ते कहि समुझावा। जीवन बिपति जान गुहरावा ॥

यह तनु पाय गहे सत नामा। नाम प्रताप लहे निजधामा ॥

'नाम' को सद्गुरु-सुरति से पाये बिना जीव 'आत्मा' नेत्र विहीन है, अज्ञान में है; इसीलिये ममता-मोह और क्रोध जैसी 'मन' की वृत्तियों को साध रही है। परमपुरुष का अकह 'नाम' ही वो डोर है जिसे पकड़ कर 'आत्मा' सत्यलोक को जाती है। सद्गुरु चरण में दृढ़ विश्वास से उनकी सुरति ही जन्म और मरण के कष्टों से उबारने वाली है।

पुरुष नाम चक्षु परवाना। लहै जीव तब जाय ठिकाना ॥

दृढ़ परतीति गहे गुरु चरना। मिटै तासु जनम औ मरना ॥

मेरे साहिब-बन्दगी सत्संगियों को मैं यही विश्वास दिला रहा हूँ तुम भव-सागर से पार हो गए; तुम्हें अब इसकी चिंता नहीं करनी है। नाम के सिमरन से बस हृदय प्रकाशित होता रहेगा, सद्गुरु दर्शन मात्र से 'सिमरन' भी होता रहेगा। काल की फाँस और ज़हर को 'नाम' रूपी तलवार पल में ही काट देती है। काल की दुनिया का जंजाल जो विष के स्वभाव का है उसे 'नाम' रूपी अमृत बुझा देता है।

सभी लोग तीरथ, व्रत और नेम-आचार से भरे पाखण्ड व्यवहार में भूले हुए हैं। सभी सगुण-निर्गुण भक्ति का गुणगान करके अकह सत्य 'नाम' के बिना अमर मुक्ति प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। वाणी है -

सुन धर्मनि मैं कहौं समुझाई। एक नाम खोजो चितलाई ॥

जिहि सुमिरत जीव होय उबारा। जाते उतरौ भवजल पारा ॥

भूल परै पाखण्ड व्यवहारा। तीरथ व्रत और नेम आचारा ॥

सगुण जोग जुगति जो गावै। बिना नाम मुक्ति नहिं पावै ॥

गुण तीनों की भक्ति में, भूल परयो संसार।

कहे कबीर निज नाम बिन, कैसे उतरे पार॥

साहिब ने 'सार-शब्द' को जानने के लिए तीन विधि से विचार करने को कहा है। जिस 'मत' और पंथ विचार से 'कालपुरुष' दर्शित हो, आत्मा के गुणों के विरुद्ध हो तो वहाँ सार-शब्द नहीं मिलेगा। दूसरा वाणी से जान पड़ेगा कि वो सद्गुरु संत का सत्य नाम सांसारिक पंथों की वाणी से है अगर है तो इस लिए भ्रम और संशय हो रहे हैं। तीसरा विचार करें कि किस 'खानि' में ले जाने वाली 'मुक्ति' मिलेगी; तीन लोकों में रखने वाली जीव मुक्ति है अथवा पार करने वाली मुक्ति।

साहिब की 'वाणी' से ज्ञान मिलता है कि 'सार-शब्द' वो अमर-तत्व है जब सद्गुरु-वाणी भी नहीं थी, 'सुरति' और शब्द परमपुरुष बाहर नहीं हुए थे, द्वैत भाव नहीं था। तब कालपुरुष और प्रकृति (माया), अक्षर और ज्योति-निरञ्जन निर्मित नहीं हुए थे, लोक-द्वीप अर्थात् इस ब्रह्माण्ड की कोई वाणी के शब्द नहीं थे। परमपुरुष स्वयं में लीन थे, पिण्ड-ब्रह्माण्ड और लोक-विस्तार नहीं था। सार-शब्द स्वयं परमपुरुष हैं। वो ही अकह 'शब्द' देकर परमपुरुष ने कबीर रूप ज्ञानी 'सद्गुरु' को युगों-युगों से निरञ्जन द्वारा सृष्टि रचना के बाद जीवों को काल से मुक्त कराने के लिए भेजा।

साहिब अपना परिचय देते हुए प्रमाण दे रहे हैं—

युगन युगन मोहि आवत भयऊ। सत्यशब्द मैं कहते रहेऊ॥  
कहा कहौं कोई नहिं मानै। जे समझै ते झगरा ठानै॥  
सतयुग चारि हँस समझाये। प्रथम राय मित्रसेन हि आये॥  
चित्र रेखा रानी कर नाऊ। तिन सुनि शब्द श्रवण चितलाऊ॥  
पुनि त्रेता युग कहौं विचारी। सात हँस त्रेता युग तारी॥  
प्रथम ऋषि श्रृंगी समझाये। दूसरे मधुकर अयोध्या आये॥  
त्रेतागत द्वापर युग आया। सत्रह जीव परवाना पाया॥  
प्रथमें राय चन्द्रविजय कहँ गयऊ। ताकी रानी इन्दुमति रहेऊ॥  
कलियुग प्रथमे गोरखदत्त समझाये। तारक भेद हम उनहिं बताये॥

दूसरे शाह बलख को बोधा। पढ़े अरबी बहुविधि सोधा॥  
 तिसरे रामानन्द पहुँ आये। गुप्त भेद हम उन्हें सुनाये॥  
 चौदह हँस कलियुग में कीन्हा। गुरु स्वरूप परवाना दीन्हा॥

आगे और स्पष्ट करते हुए कह रहे हैं कि सत्यपुरुष संतों का सुखधाम है। सत्यलोक रूपी सत्यपुरुष ही अविचल और सदा-सदा के दुःखों को नष्ट कर सुखधाम दाता हैं, सुख का सागर हैं। सत्यपुरुष 'सत्यनाम' ही सत्य सुकृत रूप 'सद्गुरु' है जो अविगत, अलख, अनाम स्वरूप है। इसी कारण सद्गुरु अजर है, आवागमन से परे है, निःस्वादी है, निष्कामी, निर्मोही और अनादि है। 'सद्गुरु' सदैव ही क्रोध रहित, बैर रहित, त्रिगुणों से परे गुणातीत निष्कलंक है। सद्गुरु का नाम कोई 'देह नाम' नहीं अपितु सत्यपुरुष-रूप, इस मृत्यु लोक में अकह 'नाम' में समाया 'ध्यान' है। इसी कारण जो व्यक्ति सद्गुरु से शब्द ग्रहण करता है, वह 'हँस' होकर जन्म-मरण के संशय से मुक्त हो जाता है।

यदि हनुमान बोध, गरुड बोध आदि से कबीर वाणी का साधारण अर्थ लिया जाए जैसा सर्वसाधारण की समझ है तो निश्चित ही विष्णु उपासकों से गरुड-बोध को बाँचने वाला मार खायेगा। लेकिन सद्गुरु उपासक संत जब उसी का आध्यात्मिक अर्थ समझायेगा तो दूसरा भी समझलेगा कि 'गरुड' नाम है 'जीव' का विष्णु नाम है 'सतो गुण' का। अर्थात् सतो गुण भावों से सम्पन्न जो मुमुक्षु है, उसको जब ज्ञानी गुरु मिलता है तब उसे रजोगुण (ब्रह्मा), सतो गुण (विष्णु) और तमोगुण (शिव) रूपी त्रिगुणों से निकाल कर त्रिगुणातीत कर देता है। तब 'गरुड' रूप मुमुक्षु तीनों गुणों को जीत कर शरीर निर्वाह अथवा प्रारब्ध बल से पूरा जीवन सतो गुण के दिव्य गुणों के साथ आनन्दपूर्वक विचरण करता हुआ दूसरों को भी 'सत्य' की पहचान बतलाता है। परखना बताता है। कबीर वाणियों का आध्यात्मिक अर्थ समझे बिना वाणी गाने वाला तीनों लोक में मार खायेगा। जो कबीर का गाया बूझेगा (समझेगा) वही तीनों लोक का रहस्य जानेगा।

इसीलिये कहा - 'सत्यगुरु शब्द गहै सो हँसा।'

सत्य सुकृत सतगुरु सतनामा। सत्य पुरुष संतन सुखधामा॥  
 सत्यपुरुष सतलोक निवासी। दुखनाशक अविचल सुखरासी॥  
 अजर अजावन सो निःस्वादी। निःकामी निरमोह अनादि॥  
 निःक्रोधी निरवैर निशंका। गुणातीत निर्द्वन्द्व निकलंका॥  
 सत्यपुरुष सत्यगुरु सो आहीं। गुरुगम सत्यगुरु नाम समाहीं॥  
 सत्यगुरु ध्यान जाहि पहुँ होई। सो हँसा नहिं जाहिं विगोई॥  
 सत्यगुरु शब्द गहै सो हँसा। मेटै जन्म मरण भौ संसा॥

जब ये 'आत्मा' परमपुरुष का अंश है तो जरूर इस आत्मा के पास परमात्म शक्तियाँ भी हैं। साहिब वाणी में कह रहे हैं - 'हँसा तू तो सबल था, अटपट तेरी चाल, रंग कुरंग ते रंग लिया, अब क्यों फिरत बेहाल।' यह आत्मा जरूर शातिर शक्तियों के अधीन हो गई है। इसकी शक्ति दब गई, शक्ति तो है। 'आत्मा' की शक्ति कहीं कम नहीं हुई। आत्म शक्तियाँ 'मन' द्वारा सम्मोहित होकर दब गई हैं। 'आत्मा' का प्रबल शत्रु है 'मन' जिसके सम्पर्क में रहने के कारण शक्तियों का हास हुआ। कह रहे हैं, भाई! किसे समझाऊँ, किससे बात करूँ, आत्मा की, परमात्मा की। किससे बात करूँ उस प्रीतम की।

मैं आया संसार में फिरा गाँव की खोर।

ऐसा बंदा न मिला जो लीजै फटक पछोर॥

जासे कहिये भेद को, सो फिर बैरी होय।

ऐसा बंदा न मिला जासे कहिये रोय।

दुनिया पूरी अँधी है। दुनिया में सबको पेट का धंधा लगा है, सब दौड़े जा रहे हैं। चाँद पर भी रोटी की ही तलाश में गया है, इन्सान। 'आत्मा' दूषित व्यक्तित्व के काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार में फँस गई है। आत्मा और शरीर की गठान आपस में लग गई है। गोस्वामी तुलसीदास रामायण में कह रहे हैं-

श्रुति पुराण कह बहु उपाई, छूटे न अधिक अधिक उरझाई ।

जड़ चेतन में ग्रंथि पड़ गई, यद्यपि मिथ्या छूटत कठिनाई ॥

गठान यद्यपि झूठी है, पर छूट नहीं रही है, और अधिक से अधिक उलझ जाती है। सभी धर्म-मत-सम्प्रदाय अपने पक्ष का महात्तम रखते हुए दूसरों के पक्ष को कमजोर कहते हुए कह रहे हैं सच्चा मोक्ष हमारे पास है। सब इसी मण्डन और खण्डन में उलझाये हुए हैं दुनिया के लोगों की आस्था को। ऐसी स्थिति में जिज्ञासु भी भ्रमित हो गए हैं कि आखिर परमतत्व की प्राप्ति कैसे करें। जैसे-जैसे इंसान तत्व की खोज कर रहा है, उलझता ही जा रहा है।

साहिब ने 'आत्मज्ञान' के लिए सिद्धान्त दिया-सुन्दर वाणी में कह रहे हैं :

तन थिर, मन थिर, वचन थिर, सुरत निरत थिर होय।

कहे कबीर ते पल को कल्प न पावे कोय ॥

पूरी तरह एकाग्र हो, तो उस एक पल का महात्तम कल्पान्तर की साधनाओं से कहीं ऊँचा है। एक चेतना जो अविचल एकाग्रता में है वो है 'आत्मा', उसमें कोई विकार नहीं है। हम जो चिंतन कर रहे हैं, ये कतई आत्मा नहीं है। 'आत्मा' चिंतन-अचिंतन, चाह-अचाह से परे है।

चिंता तो सतनाम की, और न चितवे दास।

जो कछु चितवे नाम बिन वो ही काल की फाँस ॥

वो आनंद अविचल है, उसमें कोई विकार नहीं है। उसमें कोई बेटा नहीं है, उसमें कोई बेटी नहीं है; उसमें कोई स्त्री नहीं है, कोई पुरुष नहीं है। उसमें कोई राग-द्वेष और 25 प्रकृतियाँ नहीं हैं। जब भी हम अपने अस्तित्व को या परमात्मा को प्राप्त करने का यत्न करते हैं, ये चीजें रूकावट डालती हैं। इन्हीं में 'आत्मा' की शक्ति घूम रही है; 24 घण्टे शुद्ध चेतना इन्हीं का चक्कर काट रही है - मन और माया के बीच में। ये शरीर और इन्द्रियाँ 'आत्मा' को नचा रही हैं।

इस तरह 'मोक्ष' की बात आई। लोग मुक्ति के लिए चेष्टा कर रहे हैं। सब चाह रहे हैं आत्ममोक्ष मिले। पर हो क्या रहा है। 'आत्मा' इतनी कमजोर है क्या? 'आत्मा' तो अनादि है, अनन्त है, अनश्वर है, चेतन है, अमल है, सहज है। 'मन' तो नाशवान है, क्षण भंगुर वृत्तियों से भरा है, शरीर नश्वर है, गन्दगी से भरा है। इन्होंने आत्मा को कैसे घेरा और पकड़ा है। साहिब कह रहे हैं -

**संतों अचरज बहु भारी, मूस बिलाई खाई।**

बोल रहे हैं - मुझे अचरज हो रहा है, चूहा बिल्ली को खा रहा है। वो क्या है जो आत्मा रूपी बिलाव को चूहा खा रहा है। यह तो ऐसा ही हुआ कि गाय शेर को खा रही है। ये माया रूपी गाय और सिंह रूप 'आत्मा' को खा रही है। आत्मा का वजूद और 'आत्मा' की ताकत तो बहुत बड़ी है।

**'संतों मोय देख देख आवे हाँसी। पानी में मीन मरे प्यासी।।'**

साहिब ने तत्व की तरफ इशारा किया है, तुकबंदी नहीं की, जैसा अज्ञानी समझते हैं। आत्मा को ये बहुत ही कमजोर चीजें नचा रही हैं। आत्मा इनकी फाँस में कैसे आ गई? आत्मा तो बड़ी निर्मल है विकारों से परे है। ये माया तो झूठी है इसने चेतन आत्मा को कैसे पकड़ रखा है। मन भ्रमाँक है, इसने 'आत्मा' को कैसे पकड़ लिया। आत्मा ने अपनी ताकत खुद बँधने में लगा दी है, स्वयं अपनी शक्ति से बँधन में है। अज्ञानवश अपने आप को ही आत्मा ने मन-माया के शरीर में बाँध रखा है। कैसे बाँधा?

जैसे कुत्ता काँच के भवन में भूल से घुसकर अज्ञानवश अपने स्वरूप को ही काँच में दूसरा कुत्ता मान कर भौंकता है। यथार्थ में वहाँ दूसरा कोई कुत्ता नहीं है, फिर भी भौंकते-भौंकते अपनी पूरी ऊर्जा खत्म करता है। कुत्ता जब शक्ति से अधिक भौंकता है तो या तो पागल हो जाता है या मर जाता है। उसको किसी ने नहीं मारा; उसने अपनी ही ऊर्जा मौत के लिये लगा दी। अपनी ताकत लगाई। आत्मा भी ऐसे ही कर रही है अपने आप को बँधन में डालने के लिए। अपनी ही ताकत लगाए जा रही है। मन और माया की कोई शक्ति नहीं है, वजूद नहीं है। आप अपने अनुभव से देखें;



जब विषय-विकार करके आपकी आत्मा ऊपर आज्ञाचक्र में चली जाती है तब शरीर कुछ भी नहीं कर पाता। यह माया 'शरीर' जड़ है; इसका संचालन भी स्वयं आत्मा ही कर रही है। बहुत बड़ा अचरज है। 'संतों अचरज है बहु भारी।'

आम आदमी इस आश्चर्य की तरफ़ विचार ही नहीं करता; कतई विचार नहीं कर रहा। सम्पन्न और मध्यम वर्ग के अति आधुनिक लोग कहते हैं भाई खाओ-पियो, नाचो-कूदो मौज करो। जितनी भी भौतिक सुविधायें आधुनिक युग की हैं उन्हें इकट्ठी करने में लगे हैं। इधर-उधर भ्रमण, पिकनिक मौज-मस्ती ही इनकी ज़िन्दगी है। इनकी बहुत बड़ी संख्या है जिसका कर्म, आत्मा, परमात्मा, गुरु, सद्गुरु से कोई सम्बंध नहीं है। वे ऐसे लोग होते हैं जो भक्ति या परमात्मचिंतन करने वालों का मजाक उड़ाते हैं। ज़माने के साथ नहीं चलने वाले को ज़ाहिल कहते हैं।

ऐसे लोगों को शास्त्रीय भाषा में 'पामर' शब्द से सम्बोधित किया गया है। इनकी बुद्धि ऐसी क्यों? 'कर्म सारिणी बुद्धि उत्पन्ने।' पिछले कर्मों के कारण से कुण्ठित बुद्धि है, इसलिये इनकी अक्ल में परमात्मा, आत्मकल्याण आदि नहीं रहा। दूसरे लोग वे हैं दुनिया में जो परमात्मा को, आत्मा को मान रहे हैं, ईश्वर को मान रहे हैं। सभी तरह की पूजा-भक्ति और मुक्ति भी प्राप्त करने के इच्छुक हैं। सरल हैं थोड़े-बहुत, किसी को नहीं सताना चाहते, पाप नहीं करना चाहते। थोड़ा भय है, सब चीज़ें मान रहे हैं। परमात्मा के सभी नामों में आस्था रखते हैं; एक 'सत्य' 'नाम' और सद्गुरु को जानने की कोई जिज्ञासा ऐसे लोगों में नहीं होती।

मैं किसी धर्म आस्था का पूजा-पाठ, भक्ति का खण्डन-मण्डन नहीं कर रहा हूँ। समाज निष्पक्ष होकर सोचे। वर्ष 2004 के लोकसभा चुनाव में चुनिंदा और नामी शास्त्रियों ने घोषणायें की थीं। (लेख-कटिंग मेरे पास हैं।) कि चुनाव में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन (NDA) जीतेगा और अटल जी फिर प्रधानमंत्री बनेंगे, उनकी कुण्डली में पूर्ण योग है। एक भी विद्वान ज्योतिषी और पण्डित ने नहीं लिखा था

कि मनमोहन सिंह जी प्रधानमंत्री बनेंगे या ऐसी सम्भावना है। NDA सरकार नहीं जीती और वाजपेयी जी प्रधानमंत्री नहीं बने। तो फिर क्या माना जाए उन ज्योतिषाचार्यों को। समाज को निष्पक्ष होकर चिंतन करना होगा कि क्या ज्योतिषाचार्य गुरुओं, शास्त्रों के व्याख्याकार या कथावाचक गुरुओं को संत और सद्गुरु कहा जाए? एक सत्य भक्ति 'नाम' को जाने बिना आत्मकल्याण, आत्मबोध और मोक्ष नहीं मिलेगा। साहिब ने दुनिया के लोगों को अपनी वाणी में सतर्क करते हुए यही कहा—

सद्गुरु शब्द सहाई,  
निकट गए तन रोग न व्यापे,  
पाप ताप मिट जाई ॥

कह रहे हैं भाई! सद्गुरु का 'शब्द' जब होगा तो पाप ताप निकट नहीं आ सकता। सार-शब्द की, अकह 'नाम' की ताकत हमेशा आपके साथ रहेगी।

वेद में निरञ्जन के सहस्र नाम हैं, इसलिये 'परमात्मा' नाम भी निरञ्जन का है। जब भी इस आत्मा में 'मन' का मिश्रण होता तो इस चेतन सत्ता को 'आत्मा' कहते हैं। जैसे पानी जब जम जाता है तब उसकी संज्ञा बर्फ है। इसलिये, आत्मा शब्द भी भ्रमांक है। संतों ने इस चेतन सत्ता, जो शरीर में रहती है उसे हँसा कहा। 'चल हँसा सतलोक, छोड़ों ये संसारा। यह संसार काल को देशा, कर्म का जाल पसारा ॥'

आप कहेंगे - गुरु जी, ये क्या कह रहे हैं? 'आत्मा' शब्द भ्रमांक है। कैसे? इस चेतन सत्ता को आत्मा कब कहते हैं। जब इसमें मन मिल जाता है, तब इसकी संज्ञा आत्मा है। 'जीव' कहते हैं 'प्राणेन्द्र धरेतु जीवेषु।' आत्मा में प्राण का मिश्रण होता है तब इस आत्मा को 'जीव' कहते हैं। जो कुछ भी आप इस ब्रह्माण्ड में देख रहे हैं सब कुछ स्वप्न है। 'नाद बिंद योग स्वप्न, जीव ईश भोग स्वप्न।' जीव भी स्वप्न, ईश्वर भी स्वप्न।

ईश्वर क्या है? जब चेतन ब्रह्म में 'माया' का मिश्रण होता है तब इसकी संज्ञा ईश्वर है।

भगवान क्या है? 'भग' गर्भद्वार को कहते हैं। 'वान' चलाने वाला - करने वाला। प्रजापति ब्रह्मा। 'लिंग' को भगवान कहा - भग को वाहन करने वाला। जैसे इक्कावान यानि इक्का ( टाँगा ) को चलाने वाला। कह रहे हैं - भूमि-अवतार, निराकार स्वप्न रूप है।

पाप-पुण्य स्वप्न, वेद-वेदान्त स्वप्न, बोलना-आवाज़ करना आदि भी स्वप्न है। चन्द्र, सूर्य आदि जगत के पदार्थों का जो आभास हो रहा है, ये भी स्वप्न है। स्वर्ग और नरक स्वप्न, ओहंग और सोहंग स्वप्न, ये पिण्ड और ब्रह्माण्ड स्वप्न रूप हैं। इसलिये 'आत्मा' शब्द भी भ्रमांक है। संतों ने इस चेतन सत्ता को जो शरीर में रहती है, उसे हँसा कहा। तुलनात्मक रूप से यदि हम पृथ्वी के हँस पक्षी को देखें तो एक लाजवाब जीव है हँस। हँस का रूप कितना सुन्दर है, कबूतर से थोड़ा बड़ा है। पूर्ण धवल सफेद है। खानपान भी लाजवाब है। एक पक्षी होते हुए भी गन्दगी में कभी चोंच नहीं डालता हँस। मोती चुगता है। दूध और पानी मिलाकर दे दो तो पानी छोड़ कर दूध ग्रहण कर लेता है; इतना पारखी है हँस। चरित्र इतना उच्च कि यदि हँसनी मर जाए तो कभी दूसरी हँसनी के पास हँस नहीं जाता है। विदुर होकर पूरा जीवन व्यतीत करता है। एक पक्षी का इतना उच्च चरित्र; इसीलिये तो कहते हैं किसी पति-पत्नि के बारे में, भाई इनकी जोड़ी हँसों जैसी है। किसी ने कभी कहा क्या कि कौओं जैसी जोड़ी है।

साहिब ने इसलिए इस चेतन सत्ता की संज्ञा को 'हँसा' कहा। जब ये चेतन सत्ता अमरलोक पहुँचती है तो इसके साथ 'मन' नहीं होता, शुद्ध अपने मूल रूप में पहुँचती है। क्योंकि 'हँसा' एक भ्रमांक अवस्था में 'आत्मा' है। अज्ञान अवस्था में है तो इसी लिए आपको समझाने की आवश्यकता पड़ रही है। जब आप उस 'हँस' बोध को प्राप्त हो जाते हो तो वहाँ पर आपको इसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

स्वप्न से परे सत्य रूप सो भूप है ।

नहीं आवे नहीं जाये सत्य स्वरूप है ।

सोई सत्यनाम सत्यलोक में वास है ।

कहे कबीर काटूँ यम फंदा, सद्गुरु लाख दुहाई, सद्गुरु नाम सहाई । इस तरह वो बड़ी ढाढ़स दे रहे हैं । नाम की ताकत के बाद आप पर जादू, जड़ी, जंत्र, मंत्र आदि नहीं चलेगा; भक्ति के नाम पर ये सब लूट-खसोट नज़र आ रही हैं । इनसे सावधान होना होगा । कैसे दुनिया भ्रमित कर देती है; मुझे एक छोटी घटना याद आ रही है उससे समझाता हूँ—एक पण्डित जी कहीं जा रहे थे जो अपने साथ एक बकरी लेकर जा रहे थे । तीन ठगों ने देखा कि पण्डित जी की बकरी तो काफी तंदरुस्त है, इसको किसी तरह लिया जाये । ठगों ने प्लानिंग की, एक ने कहा भाई छीन लेते हैं पण्डित जी से । दूसरा चालाक ठग बोला – नहीं छीनना ठीक नहीं होगा; पण्डित जी पहचान के हैं, पंचायत वगैरह में बात हुई तो हम पकड़े जाएंगे । इसलिये एक युक्ति बताता हूँ कि पण्डित जी से बकरी कैसे लेंगे, छीनने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी । उसने प्लानिंग बताई कान में । तीनों खड़े हो गए, बोले सब ठीक है । जंगल का रास्ता था, एक डेढ़ किलोमीटर पर योजना बनाने वाला ठग खड़ा हो गया । दो तीन किलोमीटर के बाद दूसरा खड़ा हो गया । मालूम था कि पण्डित जी फलाने गाँव जा रहे हैं । तीसरा ठग गाँव की तरफ जाने वाले रास्ते पर खड़ा हो गया ।

पण्डित जी चलते हुए जब पहले ठग के पास पहुँचे तो उसने कहा – पंडित जी पाँव लागूँ । पण्डित जी ने कहा भाई जुग-जुग जियो । वह बोला अरे पंडित जी ये कुत्ता कहां लेकर जा रहे हैं आज, – शिकारी कुत्ता है । पण्डित जी ने कहा – भाई कौन सा कुत्ता, मैं तो बकरी लेकर जा रहा हूँ । बोला – पण्डित जी भाँग तो नहीं खाई है आज, कुत्ते को लेकर जा रहे हो और बकरी बोल रहे हो । पण्डित जी ने अनसुनी की, सोचा बेवकूफ है, बकरी को कुत्ता बोल रहा है । जब आगे पहुँचे तो दूसरा ठग मिला । उसने कहा – पण्डित जी पाँव लागूँ । पण्डित जी ने कहा – भाई, जुग-जुग जियो ।

ठग बोला पण्डित जी ये गधा कहाँ लेकर जा रहे हो। पण्डित जी ने कहा – ओह ! तेरा भला हो, ये तो बकरी है तुझे गधा नज़र आ रहा है। ठग बोला, अरे पण्डित जी क्या हो गया है – गधे को बकरी बोल रहे हो, गधा लेकर जा रहे हो, मामला क्या है। आपके हाथ में गधा शोभा नहीं देता। पण्डित जी ने फिर सोचा मूर्ख है बकरी को गधा कह रहा है। अपनी मंज़िल की तरफ़ आगे बढ़ गए।

जब गाँव से पहले जंगल में तीसरा ठग मिला। उसने कहा – पण्डित जी पाँव लागू। पण्डित जी ने कहा – जुग जुग जियो भाई। वह बोला – पण्डित जी ये खच्चर कहाँ से ले आए। पण्डित जी ने कहा कैसा खच्चर, ओह भले आदमी ! यह तो बकरी है। ठग बोला – पण्डित जी खच्चर लेकर जा रहे हो बकरी बोल रहे हो। पण्डित जी ने उससे कहा – भाई कैसी बात कर रहे हो ये तो मेरी बकरी है। ठग बोला – पण्डित जी नशे में तो नहीं हो, खच्चर लेकर जा रहे हो, बकरी बता रहे हो।

पण्डित जी की बुद्धि में शक उत्पन्न हो गया, सोचा ओह ! एक ने इस बकरी को कुत्ता कहा, एक ने इसे गधा कहा, एक ने इसे खच्चर कहा। एक आदमी कहता तो अलग बात थी, कई आदमी इसे बकरी नहीं कह रहे। इसका मतलब है ये बकरी डायन है, जगह-जगह पर रूप बदल रही है। ये तो मुझे खा जायेगी। कभी शिकारी कुत्ता बन जाती है, कभी गधा तो कभी खच्चर बन जाती है। यह आगे जंगल में जाकर मुझे खा जायेगी। पण्डित वहीं ठग के पास बकरी छोड़कर भागे, अपनी जान बचाने।

दुनिया आपको ऐसा कर देगी। संतों ने आकर समाज को सावधान किया। ‘तंत्र मंत्र सब झूठ है मत भरमो कोई; सार शब्द पाये बिना कागा हँस न होई।’ पहले तो संतो की वाणी बड़ी कटाक्षमय लगती है; बड़ी कठिन सी लगती है। लेकिन अगर चिंतन करोगे तो उस वाणी में बड़ा सार नज़र आ रहा है। इस तरह काफी भ्रम हैं।

एक नाम को जानकर दूजा देय बहाय।

कबीरा दूजा देय बहाय॥

...आत्मा अनेकों संज्ञाओं में भटकी हुई है; लोग अनात्म भक्तियों में लगे हैं। संतों ने एक 'नाम' बोला; उनका कोई राग-द्वेष नहीं था। किसी मत-मतांतर की निंदा नहीं की है महापुरुषों ने खण्डन भी नहीं किया। उनकी वाणी में सार नज़र आ रहा है। कबीर साहिब ने किसी को बख़्शा भी नहीं, साफ-साफ़ कहा।

दुनिया ऐसी बावरी पत्थर पूजन जाए।  
घर की चक्की कोई न पूजे जाको पीसो खाये॥  
उधर, फिर मुसलमानों को भी कह दिया -

कंकड़ पत्थर जोड़कर मस्जिद दर्ई बनाय।  
उस पर मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय॥  
वाह! बड़ी निष्पक्ष, स्पष्ट और चेतना देने वाली वाणी है। मानव समाज को एक दिशा दी है, रोशनी दी और कहा वो तत्व आपके अन्दर है।

कबीरा खड़ा बाजार में, माँगे सबकी ख़ैर।  
न काहू से दोस्ती न काहू से बैर॥

संत-मत में भक्ति का एक ही महात्तम है - मुक्ति। मुक्ति का लक्ष्य मोक्ष है। हिन्दू धर्म तीन सिद्धान्तों पर आश्रित है - पहला तो ईश्वर है। दूसरा 'आत्मा' है जो अविनाशी है। तीसरा - हम सब अपने-अपने कर्म और संस्कारों के अनुसार ही जन्म-मरण को प्राप्त कर रहे हैं। धर्मों में सभी परमात्मा को मानते हैं, ये बात अलग है कि उसे मानने का तौर-तरीका सम्प्रदायों और पंथों के अनुसार भिन्न-भिन्न है। हिन्दू धर्म में सिद्धान्त रूप से आत्मा अमर है। क्योंकि हम सब कहते हैं हे प्रभु! इसकी आत्मा को शांति देना, कल्याण करना। पुरखों में मिलने की कामना करते हैं, कि पितृलोक मिले। तीसरा - सब संस्कारों को मान रहे हैं। जब भी कोई कष्ट होता है, दुःख होता है, बीमारियाँ आ जाती हैं तो कहते हैं; भैया क्या करें - कर्मों का लेख लिखा था वो मिला। कभी संतान पीड़ा देती है तो कहते हैं ये कर्मों का फल है। इसका मतलब है कि सब लोग 'कर्मों' को भी सिद्धान्त रूप में मान रहे हैं।

ईश्वर है, आत्मा अमर है, सभी इस भाव को सिद्धान्त रूप मान रहे हैं। अब प्रश्न उठा ये आत्मा अमर है, अनश्वर है तो कैसी है आत्मा? शास्त्रानुकूल इस आत्मा को जैसा दर्शाया गया है उसे भी हम सब सिद्धान्त रूप से मान रहे हैं। आत्मा अविनाशी है। आत्मा नित्य है। किसी भी देशकाल अवस्था में स्थित है, नाश होने वाला कभी नहीं है। आत्मा कमती-बढ़ती नहीं है। आत्मा अनाश्रित है। आत्मा को किसी तत्व की ज़रूरत नहीं है – पंच भौतिक तत्वों से परे है। आत्मा स्त्री भी नहीं है, पुरुष भी नहीं है, सब जीवों में आत्मा है। अर्थात् आत्मा बड़ी अनूठी है, किसी अन्य तत्व और वस्तु से इसकी तुलना नहीं की जा सकती ‘आत्मा’ को जानने। आत्मतत्व की प्राप्ति और आत्मकल्याण के लिए संसार की किसी भी बाहरी वस्तु का सहारा नहीं लिया जा सकता। किसी प्रकार की बाहरी भक्ति से ‘मन’ और ‘माया’ से आत्मा को अलग नहीं किया जा सकता। हम सब चाहते हैं ये ‘आत्मा’ माया से छूटे। आत्मा बँधन में कैसे है, यह जानने का प्रयास कोई नहीं करता।

जिस तरह ‘मन’ की पाँच वृत्तियाँ हैं – काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार इसके विपरीत, ‘आत्मा’ की पाँच वृत्तियाँ हैं – अविनाशी, चेतन, अमल, सहज और आनंदमयी। गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामायण में अपने शब्दों में निरूपण किया—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।

चेतन अमल सहज सुखराशि॥

इसके विपरीत ‘माया’ शरीर को नाशवान भौतिक तत्वों से निर्मित कहा –

क्षित जल पावक गगन समीरा।

पाँच तत्व का अधम शरीरा॥

आदमी को चिंतन करना होगा आत्म तत्व के लिए। ऐसी बेजोड़-बेमिसाल ‘आत्मा’ मन और माया से बँध गई है। सब आत्मज्ञान की बातें तो कर रहे हैं, पर उसको जानने यथार्थ प्रयास नहीं कर रहे हैं। जब भी हम

व्यक्ति को देखते हैं कहीं दूर तक आत्मा नज़र नहीं आ रही है, किसी भी व्यक्ति में। इसका मतलब है शरीर में कुछ झंझट है, कुछ रहस्य है।

**काया गढ़ खोजो मोरे भाई। तेरी काल अवध घट जाई॥**

इसका मतलब है हम अपनी आत्मा को नहीं समझ पा रहे हैं। आज सब लोग एक शिक्षित युग में जी रहे हैं, पर हमें अपनी आत्मा का बोध नहीं हो पा रहा है। हम सब औपचारिक भाव से ‘आत्मा’ को मान रहे हैं। आत्मतत्त्व का बोध करना होगा कि ‘आत्मा’ कहाँ-कैसी-क्या चीज़ है? नज़र क्यों नहीं आ रही है। किसी व्यक्ति को देखो बस पहले ही एक जिस्म नज़र आता है। शरीर तो ‘आत्मा’ है नहीं। देह तो हमारा बुत है, खाक्रा है जो नाश हो जाता है, पक्के तौर पर। इस शरीर के जो भी गुण हैं; वृत्तियाँ हैं, वो ‘आत्मा’ से मेल नहीं खाते। कोई मेचिंग नहीं हो रहा आत्मा से। शरीर में केवल पाँच चीज़ें नज़र आ रही हैं – जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी और आकाश। ये कभी भी आत्मा नहीं हो सकते। ये सबका जिस्म माँ के रज़ और पिता के वीरज से बना हुआ है, पाँच भौतिक तत्वों से युक्त है। इन पाँच तत्वों के कारण पच्चीस प्रकृति सबके अन्दर हैं।

इस शरीर को अधम कहा। इसको अधम क्यों कहा? ‘क्षित जल पावक गगन समीरा, पाँच तत्व को अधम शरीरा।’ अधम कहते हैं नीच को। अधम शब्द नीचता को इंगित करता है, निकृष्टता को इंगित कर रहा है। क्योंकि शरीर की वृत्तियाँ, इसके स्वभाव, इसके लक्षण, इसके गुण अच्छे नहीं हैं। विषयों से युक्त हैं और इसके चारों तरफ़ से गन्दगी निकल रही है। मल-मूत्र के द्वारों से भयंकर गन्दगी निकल रही है। तीसरा मुख्य द्वार ‘मुख’ को देखो – सुबह जब आप सोकर उठते हैं तो इसमें बड़ी दुर्गन्ध होती है। नासिका से नाक निकलती है, कभी थोड़ी लटक जाए तो बड़ी भद्दी लगती है। तबियत नहीं करती कि किसी की तरफ़ देखें। आँखों से कीच निकलती है। कितना भी सुन्दर व्यक्ति हो अगर आँखों से कीच निकल रही है तो बड़ा भद्दा लगता है। कानों में खूँट है, बड़ी खराब, सड़ी हुई प्याज की तरह कानों, से बदबू आती है। कुछ लोग ठीक से कानों की



सफाई नहीं करते। निराले तरीके से शरीर से गन्दगी प्रस्फुटित हो रही है। सभी द्वारों से गन्दगी निकलती है। रोम-रोम के छिद्रों से पसीना निकलकर बदबू देने लगता है। अपनी गन्दगी मनुष्य को खुद महसूस नहीं हो रही, लेकिन गन्दगी से भरा पड़ा है। रोज़ाना नहाये जा रहे हैं उसके बाद भी यह खराब हो जाता है; बड़ा अधम है।

पाँच तत्व को तन रच्यो जानत संत सुजान।

जामें कछु साँचो नहीं, नानक साँची मान॥

शरीर में कुछ भी 'सार' नहीं है, कम से कम यह देह 'आत्मा' नहीं हो सकती है। आत्मा के अन्दर कोई भौतिक-तत्व नहीं है, तत्व रहित है।

पाँच तत्व किस प्रकार उत्पन्न होते हैं और वे ही एक-दूसरे को नष्ट करते हैं। साहिब वाणी में वेदों के माध्यम से समझा रहे हैं -

पृथ्वी अस्थूल ऋग्वेद की बानी।

नीर अस्थूल यजुर पहिचानी॥

वायु अस्थूल सामश्रुति कहिये।

तेज अस्थूल अथर्वण लहिये॥

अनहद अस्थूल सोहंग की बानी।

सुसम देवता को पहिचानी॥

खोजे ताहि मुक्त तब होई।

सुसम वेद सम और न कोई॥

प्रथम पृथ्वी को जल उपजावे। सो जल बहुर पृथ्वी को खावै॥

जल की उत्पत्त तेज सो होई। भक्षे तेज पुनि जल को सोई॥

तेज को वायु रूप उपजावे। उलट वायु पुनि ताको खावे॥

वायु रूप आकाश उपजाई। फिर आकाश पुन ताको खाई॥

आकाश शून्यते उत्पत्त जानौ। बहुरि शून्य में जाये समानौ॥

साहिब कह रहे हैं चारों वेद, ईश्वर की बात आकाश को शून्य में समाने तक बताकर आगे नेति-नेति-नेति कहकर चुप हो जाते हैं। अर्थात् शून्य

ब्रह्म (काल निरंजन) से सृष्टि रचीयता 'ब्रह्मा' की उत्पत्ति और पाँच तत्वों की माया-शक्ति तक का ज्ञान ही वेदों से मिल रहा है। साहिब कह रहे हैं निरञ्जन ही शून्य रूप कालपुरुष है, तीन-लोकों का विधाता है। शून्य ब्रह्मा भी नश्वर है अमरलोक से निष्कासित और परमपुरुष द्वारा श्रापित है। कालपुरुष ने ही परमपुरुष अंश हँसात्मा को जीव-शरीरों में बाँध कर वशीभूत कर रखा है। तत्व रहित सात शून्य से परे परमपुरुष अंश को परम-सुरति के बिना नहीं पाया जा सकता। सुरति-तत्व को जाने बिना आवागमन में फँसे रहना होगा। इसलिये सुरति को जानो और समझो।

सात सुरति तो संसार की हैं क्योंकि सुरति से ही सृष्टि का आभास है। सात सुरति ही सभी देवों में स्थित दृश्य-शक्तियाँ हैं। अर्थात् अमी सुरत, मूल सुरति, चमक सुरति, शून्य सुरति, श्रवण सुरति, वाणी सुरति, नाड़ी तंत्र सुरति ही सात-कर्म और सात-शून्य में समाई हैं। इक्कीस ब्रह्माण्डों तक निरञ्जन कालपुरुष का ही ज्ञान है। अर्थात् पाताल से शून्य तक निरञ्जन का ही राज है।

अष्टम सुरति (अष्टकमल) की उत्पत्ति परमपुरुष से है जिसे प्रथम विहँग-सुरति कहा गया है। परमपुरुष ने अंश आत्मा को काल निरञ्जन को देने और 'अमरलोक' में ही रखने के लिए आद्यशक्ति उत्पन्न कर उनके साथ भेजा। यही आद्यशक्ति रूप 'जेठी सुरति' से हँसात्मा जुड़ी होने से चारों लोकों में इसका विस्तार है। इसी आठवीं 'सुरति' को विहँग सुरति कहकर संतों ने उस मूल से जुड़ने को कहा है। इसी 'सुरति' से सद्गुरु उस एक अकह 'नाम' से अपने 'नामी' सत्यभक्त को जोड़ता है। वाणी है -

बिना सुरति पुनि कछु अनपाई। सुरति विहुँ नहिं आवहि जाई॥

सो अब तुमसों कहो बुझाई। सात सुरति सब देव लखाई॥

पुरुष सुरति आपहि उपराजा। विहँग सुरति प्रथमहि किय साजा॥

बीस आठ प्रकृति जो कीन्हा। जो जनमें तस भुगनै लीन्हा॥

प्रथम कहैं अब सुरति विचारी। पुरुष एक उत्पन्न किय नारी॥

जेठी सुरति तबहि उच्चारि। चारहु लोक कीन्ह विस्तारी॥

विहँग सुरति ताही सो कहिय। ब्रह्म सुरति मूल वह लहिये॥  
 निरति सुरति ये स्थूल हि छाजा। हरषत सुरति विदेही साजा॥  
 बाढ़ी सुरति नाद गुन गहै। धीर सुरति नाद गुण गहै॥  
 सुरति कमल के बीच में, सद्गुरु को विश्राम।  
 सहस्र जपा अजपा कही, पुरुष को निजधाम॥  
 सुरति कमल पर बैठिके, अमी सरोवर चाखि।  
 कहे कबीर बिचारिके, संत विवेकहि भाखि॥  
 उर्ध्व कमल के उपरै, परिमल बास सुबास।  
 अमी कमल महँ बैठिके, दर्शन दर्श हुलास॥

‘तीन लोक से भिन्न पसारा, अमरलोक सद्गुरु का न्यारा।’ दुनिया के लोग तो सांसारिक पदार्थ ही चाह रहे हैं, सद्गुरु जो देना चाहते हैं, वो संसारी मनुष्य नहीं लेना चाहते। धर्मगुरु, धर्म के नाम पर वंशवाद और धन के लिये धार्मिक आयोजन करते हैं; उन्हें पहचानो। जिसे संसार ने परमात्मा कहा, साहिब ने उसे कालपुरुष कहा है। जो लोग संतमत पर संतो की वाणी पर चिंतन करेंगे उन्हें मेरी बातें सत्य लगेंगी। शिव जी से अधिक और सर्वोच्च ‘योग’ समाधि का ज्ञान संसार में किसी को नहीं है, पर वो भी ‘मोक्ष’ भक्ति नहीं है। साहिब कह रहे हैं – मेरी भक्ति न्यारी है, निरञ्जन से परे, ‘मोक्ष’ की भक्ति है।

सद्गुरु के गुप्त ‘नाम’ की अक्षय उर्जा ही मोक्षदायनी है। परमपुरुष के गुप्त ‘नाम’ से, उसमें लीन सद्गुरु ही आत्मा को उसका बोध कराने में समर्थ है। सद्गुरु से ‘सार-नाम’ पाकर ही ‘आत्मा’ ‘मन’ के बँधनों को समझकर परम-आनन्द का मार्ग पकड़ती है। सुरति रूप कमलपुष्प में ही सद्गुरु का वास है; उसी में सदा विश्राम है। सुरति-कमल में ही अजपा-जाप की डोर से सद्गुरु परमपुरुष में लीन रहते हैं। सद्गुरु भक्त भी सुरति-कमल से जुड़कर अमृत के सागर को पा लेता है। सीधे अष्टम-चक्र से जोड़कर सद्गुरु ‘आत्मा’ को जाग्रत कर देते हैं और ‘मन’ के भ्रमरूप अज्ञान से ‘आत्मा’ अपने को दूर कर लेती है। यही है आत्म-जाग्रति।

हमारी देह में जो 'जीव' (प्राण) है वो भी पवन में समाया है। ब्रह्माण्ड में ही जीव का वास है। पवन से जीव हर छिन-पल वायु-रूप हमारी नाभि तक आ रहा है। हमारी नासिका, आँखें, कान ही पवन रूपी जीव के आने-जाने के 'साक्षी' द्वार हैं। ब्रह्माण्ड की वायु में पवन-रूप पुरुष की स्वाँसा ही 'जीव' बनकर शरीरों में है। प्राण रूप वायु सतत् हमारे शरीर में होने के कारण हमें उसका बोध नहीं है। हम अपनी चेतन-शक्ति से ही अनभिज्ञ हैं। परमपुरुष की स्वाति-पवन स्वाँसा से हमें शीश के सवा हाथ ऊपर सदगुरु-सुरति विहँग-मार्ग द्वारा जोड़ेगी। आत्मा अपने मूलधाम और परम-सुरति को भूलकर निरञ्जन की मूल-सुरति के साथ प्राण-वायु होकर भटक रही है। निरञ्जन की पहचान ही यह है कि वह 'आत्मा' को उसका स्वरूप जानने ही नहीं देता। सदगुरु के अकह गुप्त 'नाम' में ही आत्मा का आनंद छिपा है।

**पुरुष भेद कोउ जानत नहीं। लागे सभै काल की छाहीं।।**

**राखनहार ओर कोउ आही। करू विश्वास मिलाऊँ ताही।।**

सत्य भक्ति में 'गुरु' के समान अन्य कोई नहीं है त्रिलोकों में। संतमत, शिष्य को केवल एक सदगुरु में समर्पण सिखाता है, गुरु महिमा ही सर्वोपरि है। जब धनी धर्मदास साहिब की शरण में आ गए तो सदगुरु 'शब्द' को मानकर अपने पुत्र नारायण को भी त्याग दिया। शिष्य जब हृदय में गुरु चरणों का ही ध्यान-धारण कर लेता है तब ही गुरु-स्वरूप का दर्शन होता है। ऐसे शिष्य के सभी भ्रम और संशय मिटकर काल की समस्त शाखाएँ नष्ट हो जाते हैं। गुरु पद में एकाग्र भक्त के सभी मोह छूटकर आत्मज्ञान का उदय हो जाता है, सभी भ्रमों का नाश हो जाता है। समुद्र में जल बूँद के समाने के समान शिष्य भी गुरु में समाकर अपना अलग अस्तित्व नहीं देखता।

**बिनु विश्वास जीव नहिं तरई। गुरु प्रतीत बिनु नरकहिं परई।।**

**गुरु सम और न दानी भाई। गुरु चरणन चित राखु समाई।।**

बड़े अचरज की बात है बड़े-बड़े योगी, शास्त्र व्याख्याता, संत-मत के नाम से सत्यपथ के डेरे चलाने वाले 'गुरु' और कबीर वाणी कहने वाले, पाँच तत्व के पाँच नामों के ज्ञान में उलझा रहे हैं। पर सच्चे संतों ने कबीर साहिब के निःअक्षर 'नाम' की बात कही है।

**पाँच शब्द भ्रम के रूपा। इनके आगे नाम अनूपा।।**

जो कहन-सुनन से न्यारा 'नाम' है, कह रहे हैं उसकी खबर नहीं जानी। वो निःअक्षर, अगम है, अपार है।

**सत्य नाम निःअक्षर सारा। सो सबसे है अगम अपारा।।**

हृदय के आठ-कोष्ठकों में 'मन' घूमता रहता है। इसका मतलब है कि इंसान का स्वभाव भी मन के अनुसार है। 'मन' जैसा चाहता है वैसा आपका स्वभाव बनाता है। जब भी हम दुनिया के लोगों को देखते हैं तो एकरूपता-समता नज़र नहीं आती। कभी इन्सान गुस्से में होता है, कभी खुश होता है, कभी उदास होता है। कभी कुछ-कभी कुछ दिखाई देता है, यह क्या है? आदमी खुद भी नहीं जान पा रहा है। क्या कारण है कभी खुश हूँ, कभी उदास हूँ, अन्यान्य कल्पनाओं में जी रहा हूँ; आदमी नहीं जानता। अवस्थायें मनुष्य की ऐसी क्यों हो रही हैं? आदमी इससे बिलकुल बेखबर है। अगर इसका भी पता चल जाए तो 'मन' की पूरी स्थिति नियंत्रण में आ जाएगी। पर ... 'मन' नियंत्रण में नहीं आना चाहता है। आप मन की आज्ञा का पालन क्यों कर रहे हैं? क्योंकि आप अपने को 'मन' ही समझ रहे हैं। आत्मा से अलग मन नज़र नहीं आ रहा है।

'मन' अँधकार में रहता है, वहीं वो पोषित होता है। अँधकार और संसार का अस्तित्व ही संसार का सार है। संसार की ताकत ही अज्ञान है और अज्ञान के अन्दर ही 'मन' रहता है। अज्ञान की उत्पत्ति अँधकार से होती है।

अँधकार हृदय में कहाँ से आया? आकाश तत्व से। इस तरह 'साधक' जिन अवस्थाओं में भी योग-साधना से पहुँचता है वो सब 'स्वप्न' अवस्था

है।... तो मैंने कहा, हमारा मन, हृदय के अष्ट-कोष्ठकों में घूमता रहता है। जहाँ-जहाँ मन जाता है वो 'मन' की एक अवस्था है। आत्मा का स्वभाव नहीं बदलता, सदा एक रूप है।

आइए, देखते हैं ये हमारा 'मन' कैसे-कैसे घूमता है। कैसे-कैसे हम स्वभाव (Nature) से अनभिज्ञ हैं?

**उत्तर दल पर जब मन जाई। दया धर्म तब उर में आई ॥**

जब 'मन' हृदय के उत्तर कोष्ठक में बैठता है, उत्तर दिशा में बैठता है तो भक्ति, दया, धर्म, ज्ञान के विचार आयेंगे। स्वाभाविक आपका दिल ईश्वर की तरफ़ चलेगा थोड़ी देर के लिए।

**दक्षिण दल पर जब मन जाई। महा क्रोध तब उर में आई ॥**

जब ये मन दक्षिण कोष्ठक पर चला जाता है तब क्रोध आएगा। आपको किसी की बात अच्छी नहीं लगेगी, आप झगड़ा करने की स्थिति में होंगे। कभी-कभी आप कहते हैं, अभी बात मत करो, मेरा मूड ठीक नहीं है। मूड ठीक नहीं है इसका मतलब है, 'मन' की स्थिति ठीक नहीं है।

**पश्चिम दल पर मन जब जाई। काम वासना उर में आई ॥**

वाह! जब पश्चिम दल पर 'मन' जाता है तब विषय विकारों की बातों का चिन्तन करने लगोगे। पिछली इधर-उधर की बातें याद करके उन्हीं में रूचि लेकर आनन्द लगोगा।

**पूर्व दल पर जब मन जाई। हँसी भाव तब उर में आई ॥**

जब 'मन' पूर्व दल पर होगा तो आपके हृदय में अनायास हँसने का भाव आएगा। किसी को चलते देखकर, बातचीत करते हुए बिना मतलब बातों पर हँसी आएगी।

चार और कोण हैं - वायव्य, आग्नेय, ईशान, नैऋत्य।

**वायु दल पर जब मन जाई। लोभ भाव तब हृदय प्रकटाई ॥**

जब वायु दल पर 'मन' जाता है तब लालच आएगा। आपको बस लालच ही सूझेगी। दुकान खोलूँ, गाड़ी खरीदूँगा, फलाना काम करूँगा।

रूपये-पैसे इकट्ठे करना है। प्लानिंग ही बनती रहेंगी।

**अग्नि दल पर मन जब जाई। ईर्ष्या भाव तब उर में आई ॥**

आग्नेय दल पर जब 'मन' होगा तो ईर्ष्या-जलन आदि के भाव हृदय में आयेंगे आपके अन्दर। दूसरों की निन्दा करने लगेंगे।

**नैऋत्य दल में जब मन जाई ॥ उदासीनता तब हृदय आई ॥**

सातवाँ दल है नैऋत्य, उस पर जब मन टिकता है तो उदासीनता आएगी। किसी भी चीज़ में आपको रुचि नहीं लगेगी, उदास से रहेंगे। ऐसा लगेगा जैसे आप दुःखी हैं। आपका किसी से बात करने का भी 'मन' नहीं करेगा।

**ईशान दल पर मन जब जाता। अहंकार तब उर में आता ॥**

जब ईशान दल पर मन जाता है तब अहंकार (घमण्ड-दम्भ) का भाव उत्पन्न होगा। बस आप सोचने लगेंगे हमसे तगड़ा कोई नहीं है। अपनी इज्जत, मान-बड़ाई बहुत अच्छी लगेगी।

इस तरह आठ तरह की विचारधारा, आठ तरह से सोचने की क्रिया आपमें 'मन' से होती रहती हैं। 'मन तरंग में जगत भूलाना।' मन हमें इन स्थितियों में क्यों घुमाता है? अगर आप हमेशा एक समरूप में रहेंगे तो 'आत्मा' की अनुभूति होने लगेगी। इसलिये जैसे माँ एक छोटे बच्चे को तरह-तरह से बहलाने के लिए (Engage) खिलाती रहती है; इसी तरह मन चौबीस घण्टे 'आत्म तत्व' को बहला रहा है। साहिब वाणी में कह रहे हैं -

**जीव के संग मन काल को बासा।**

**अज्ञानी नर गहे विश्वासा ॥**

भाइयों, ये मन अच्छे-अच्छों को नचा रहा है, बहुत ताकतवर है। ये जो विविध प्रकृति (Nature) है, ये आपकी 'आत्मा' नहीं है।

हाँ! आत्मा के लिए कम-से-कम दुनिया के जितने भी मत-मतान्तर, पंथ मार्ग और धर्म हैं, एक बात स्वीकार कर रहे हैं कि 'आत्मा' अमर है। साहिब कबीर ने 'आत्मज्ञान' की ही युक्ति संसार को दी है।

मैंने दो साल तक बिना भोजन के 'जीकर' देखा है। बिना सोय

‘जीकर’ देखा है। मैं ‘जी’ लिया। बस एक विचार था, ‘आत्मा’ को भूख ही नहीं लगती है, फिर भूख कैसी? ‘आत्मा’ तो सोती जागती नहीं तो सोना कैसा? आदमी दो दिन नहीं सोये तो पागल हो जाता है। क्यों? बस, वो सोचता है कि मैं सोया नहीं। मैं तो बस यही सोचता रहा कि हूँ ही ‘आत्मा’, तो किसी भी चीज़ की ज़रूरत कुछ भी नहीं।

निरञ्जन सृष्टि के बाद परमपुरुष ने जीवों की करूण-पुकार सुनकर प्रथम बार ज्ञानी नाम से अपने अंश (सद्गुरु कबीर) को जीवों को लाने भेजा। साहिब जब अमरलोक से आए तो मृत्युलोक में कोई भी जीव अमरलोक की बात नहीं जानता था। कालपुरुष मन रूप सबके अन्दर समाया था। कोई भी सत्यभक्ति का चिन्ह नहीं जानता था। जब ज्ञानी वापस अमरलोक गये तो परमपुरुष ने पूछा, क्या बात है ज्ञानी कोई भी जीव नहीं लाये। ज्ञानी ने कहा – काल निरञ्जन ने सब जीवों को अपनी छाया से बाँधकर भ्रमित कर रखा है। कोई भी जीव सत्यभक्ति को नहीं समझ पा रहा है। तब परमपुरुष ने स्वयं का ‘नाम’ गुप्त वस्तु रूप देकर पुनः ज्ञानी (कबीर) को निरञ्जन सृष्टि में जीवों को लाने भेजा।

**परमपुरुष गुप्त वस्तु दीन्ही मोहि।**

परमपुरुष बोले हैं ज्ञानी! यह अमूल्य ‘नाम’ की शक्ति जिसके पास पहुँचेगी उस पर निरञ्जन का कभी ज़ोर नहीं चलेगा। इसलिये जो सद्गुरु के ‘नामी’ हैं उन पर कालपुरुष का ज़ोर नहीं चलता है। अब ‘माया’ का प्रभाव नहीं रहा है। दुनिया से निराले हो गये हैं। सद्गुरु से नाम प्राप्ति की यही महिमा है। साहिब ने तब जीवों को अमरलोक पहुँचाया।

**नाम होय तो माथ नमावे।**

**नहीं तो यह मन नाच नचावे॥**

जिस दिन से नाम की ताक़त मिलती है सबसे पहले दिमाग के ऊपर जो ‘मन’ और ‘माया’ का नशा होता है वो पूरी तरह से ख़त्म हो जाता है। दूसरी बात – आपको अपने अन्दर मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार का पूरा भेद समझ में आने लगता है। पूरे रहस्य समझ में आने लगते हैं, मन-माया के।



तीसरा – आपको लगेगा एक बहुत बड़ी शक्ति मेरे साथ है। वो ही शक्ति ‘मन’ पर अँकुश लगाती है। कोई भी मनुष्य इस मन को अपनी ताकत से जीत नहीं सकता। भाइयों ये तीन लोक शैतानी ताकत के हाथ में हैं। सब पर कालपुरुष का रंग चढ़ा हुआ है। कालपुरुष कभी नहीं चाहता कि सत्यभक्ति इस धरती पर चले।

सच्ची भक्ति कैसे करें? एक बात याद रहे कि प्रेम ही भक्ति है। प्रेम है – सुरति लगाना। हमारी सुरति वहीं रहती है, जहाँ हमारा प्रेम हो, लगन हो। लोभी की सुरति धन में रहती है, क्योंकि उसे धन से ही प्रेम है। कामी की सुरति विषय-विकारों में रहती है क्योंकि उसे विषयों से ही प्रेम है। इसी तरह ‘सद्गुरु’ में सुरति लगाना ही साहिब से प्रेम करना है, सच्ची परमात्मभक्ति करना है। सत्यपुरुष को तो कभी देखा नहीं, इसलिये उसकी सुरति मनुष्य नहीं कर सकता। ‘सद्गुरु’ हमारे सामने है और वही साहिब का प्रतिनिधि है।

गुरु साहिब तो एक हैं, दूजा सब आकार।

आपा तज के प्रभु भजै, तब पावै दीदार॥

सुरति बाँधि अस्थिर करो, गुरु में देइ समाय।

कहे कबीर धर्मदास से, अगम पंथ लखाय॥

दुनिया में एक दो नहीं बल्कि करोड़ों नाम हैं, लेकिन उनसे मोक्ष प्राप्त नहीं होगा। दूसरी ओर जो सच्चा नाम है, वो गुप्त (निःअक्षर-अकह) है, उसे विरले संत ही जानते हैं। इसलिये तो कहा – ‘मूल नाम गुरु बिन नहीं पावे, पूरा गुरु होय सोइ लखावै।’

बिना सार-शब्द के कालपुरुष के यम, शरीरों में बाँध कर रखते हैं। सार-शब्द का किसी वेद-पुराण-किताब में वर्णन नहीं है, क्योंकि यह लिखने में आने वाला शब्द नहीं है। अमिय (अमृत) लोक का शब्द है। सद्गुरु में समाया शब्द और शब्द में समाया सद्गुरु ही सच्चा नाम है। सत्-शब्द स्वतः सहज आत्मरूप है, सबका कर्ता और कारण है। सत्-शब्द का अनुभव सद्गुरु चरणों में सहज-समाधि अर्थात् विश्वास-भाव है। सार-शब्द की धारक शक्ति ही 11वें द्वार से आगे जाने का ‘मकरतार’ कहा गया है। उस

स्वाँस रहित और शब्द रहित 'सार-शब्द' का अनुभव वही संत करता है जिसकी सुरति निरन्तर शब्दमय रहती है। वो अजपा शब्द है जिसकी ध्वनि सहज अक्षरगूँज है। 'सोहं' शब्द श्वाँस-उश्वाँस के आधार से होता है, इस कारण अजपा-शब्द नहीं है। इसी प्रकार निरञ्जन के शक्ति स्वरूप ज्योति निरंकार, ओम, रंकार अजपा-शब्द नहीं है जो साधारण भाव में अजपा कहे जाते हैं।

सृष्टि में निरञ्जन नाम की शाखाओं के ही कृत्रिम (भौतिक) नामों में दुनिया उलझी है। कहीं भी सद्गुरु-शब्द से प्रीति नहीं है जिस कारण जीव मृत्यु चक्र में फँसा है। सत्यलोक से बिछुड़ कर हँस कालपुरुष के विष को अमृत समझकर उससे प्रीति करने लगा है।

सद्गुरु 'कबीर' तो केवल शब्द-नाम की महिमा समझाने संसार में आये और कहा -

केवल नाम निःअक्षर आई। निःअक्षर में रहै समाई॥  
 निःअक्षर ते करै निवेरा। कहे कबीर सोइ जन मेरा॥  
 अमर मूल मैं बरन सुनाई। जिहिते हँसा लोक सिधाई॥  
 शब्द भेद जाने जो कोई। सार शब्द में रहै समोई॥

जब सत्यपुरुष के नाम की शक्ति मनुष्य में आन समाती है तब कालरूपी कसाई नहीं रोक सकता। सद्गुरु से परमपुरुष शक्ति पाते ही सोलह गुणों की शक्ति शिष्य में आ जाती है। 1. ज्ञान, 2. विवेक, 3. सत्य, 4. संतोष, 5. प्रेमभाव, 6. धीरज, 7. प्रचार से दूरी, 8. दया, 9. क्षमा, 10. शील, 11. निःकर्मा, 12. त्याग, 13. वैराग्य, 14. शांति, 15. करुणा, 16. मित्रभाव (समता)।

साहिब ने अपने सुपात्र शिष्य धर्मदास को अकह 'नाम' और 'कबीर' का भेद/रहस्य समझाते हुए कहा - हे धर्मदास! तुम, मैं और चौरासी लाख योनियों में समाई जीवात्मा एक ही हैं। चेतन 'जीव' रूप सब शरीरों में समाया 'कबीर' है। शब्द कबीर एक भाव 'नाम' है जिसे द्वैत रूप नहीं देखा जा सकता। परमपुरुष 'शब्द' का ही सकल विस्तार है। धर्मदास और

कबीर एक होकर भी बार-बार जीव-रूप भिन्न-भिन्न शरीर पाकर शब्द रूप चेतन 'आत्मा' ही है। वाणी है -

एक रूप धर्मदास कबीरा। लख चौरासी एक शरीरा ॥  
 कायाबीर नाम है धीरू। सब घट रहें समाय कबीरू ॥  
 जो बोलत सो शब्द प्रवाना। शब्दहि रूप कबीर समाना ॥  
 शब्दहि रूप कबीर कहाई। शब्द रूप होय रहै समाई ॥  
 निजही शब्द कबीर है सारा। जाका है निज सकल पसारा ॥  
 एकै रूप शब्द पुनि एका। एक भाव दुतिया नहीं देखा ॥  
 एकहि हम तुम एक शरीरा। एक शब्द है मति के धीरा ॥  
 एको रूप एकै अनुहारी। एकहि पुरुष सकल विस्तारी ॥

रंग रूप सब एक है, एकहि सकल पसार।

एक जान सोई एक है, दूजा यह संसार ॥

संसार के असत्य आवरण को ही सत्य मानने की भ्रांति में सब जीव हैं। इसी में रहकर जन्म-मृत्यु के आवागमन चक्र में हैं; किन्तु यह जानकर भी मनुष्य की मूढ़ता की कोई सीमा नहीं है। सृष्टिकर्ता ईश्वर के करोड़ों नाम प्रचलित हैं। सहस्र नाम विष्णु जी के हैं, सहस्र नाम शिव जी के भी हैं। अन्य देवी-देवताओं के भी सहस्रों नाम हैं। समग्र नाम उस सृष्टि-कर्ता काल निरञ्जन (मन) में ही समाते हैं। आठों सिद्धियाँ तथा नौ निधियाँ आदि 'ऐश्वर्य' हैं। ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य इन छः 'विभूतियों' को ही 'भग' कहा गया है। इस प्रकार 'षडैश्वर्य-सम्पन्न' ईश्वर (ब्रह्म) ही सगुण रूप में 'भगवान' कहा जाता है। साहिब कबीर की वाणी है - 'संतो सबका साक्षी मेरा साईं।' 'ब्रह्म, विष्णु, रुद्र, ईश्वर ले सब जग प्रगटाई ॥'

इसलिये, 52 अक्षरों की सीमा में आने वाले जितने भी नाम हैं, वे तो प्रकट हैं, शास्त्रों-किताबों में उनका उल्लेख है, इन नामों से मुक्ति नहीं मिलेगी। जो सच्चा 'नाम' है वो गुप्त है, उसे विरले संत ही जानते हैं। वो सजीव गुप्त 'नाम' जिस जीव को सद्गुरु से मिलता है वही मोक्षधाम को पाता है।

काया नाम सबहिं गुण गावैं, विदेह नाम कोई विरला पावै।

विदेह नाम पावेगा सोई, जिसका सद्गुरु साँचा होई॥

सार-शब्द (अकह नाम) को गुरु के वचनों से पकड़े रहो। जिस परम-तत्त्व को ऋषि-मुनि, ब्रह्मादि, ज्ञानी लोग खोज रहे हैं, वो तुम्हें गुरु-चरणों में प्रीत करने से मिल जाएगा। स्वयं को आत्मरूप जानकर 'परमात्म तत्त्व' सद्गुरु से प्राप्त 'सार नाम' में ही ध्यान लगायें। इससे ही हृदय में दया और दीनता का भाव आएगा, और सच से प्रीति होगी। राग-द्वेष-क्रोध-मोह, विषय-विकारों से मुक्ति मिलेगी। काल तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ पायेगा; नाम सदैव रक्षा करेगा।

संत सहजोबाई के गुरु संत चरणदास कह रहे हैं कि निःअक्षर का भेद कोई विरला ही पाता है। निःअक्षर शब्द बोलने में नहीं आता, सद्गुरु वाणी में संकेत से उसका भेद बता देते हैं। जो 'नाम' बोलने में आ गया वो तो क्षर है, नाशवान है। ब्रह्मा, शिव जी, शेषनाग सब ही नाशवान हैं। त्रिगुण माया भी नाशवान है। सब अवतार नाशवान माया ही जानो। उत्पत्ति प्रलय, सूर्य-चन्द्र-तारे-धरती-आकाश आदि सब क्षर हैं। पानी-पवन-अग्नि-, स्वर्ग-नरक नाशवान हैं। चरण दास जी के गुरु संत शुकदेव जी ने उनसे कहा कि निःअक्षर 'नाम' इन सबसे न्यारा है, वो कभी नाश को प्राप्त नहीं होता। वाणी है -

वह अच्छर कोई विरला पावै।

जा अच्छर के लाग न बिन्दी, सत्गुरु सैनहिं सैन बतावै॥

छर ही नाद वेद अरु पंडित, छर ज्ञानी अज्ञानी।

बांचन अच्छर छर ही जानो, छर ही चारों बानी॥

ब्रह्मा सेस महेसर छर ही, छर ही त्रेगुन माया।

छर ही सहित लिये औतारा, छर वहाँ तक जहँ माया॥

पाँचों मुद्रा जोग युक्ति छर, छर ही लगै समाधा॥

आठों सिद्धि मुक्ति फल छर ही, छर ही तन मन साधा॥

रवि ससि तारा मंडल छर ही, छर ही धरनि आकासा॥

छर ही नीर पवन अरु पावक, नर्क स्वर्ग छर वासा ॥

छर ही उत्पत्ति परलय छर ही, छर ही जानन हारा ॥

चरणदास शुकदेव बतावैं, निःअच्छर सबसुँ न्यारा ॥

साहिब समझा रहे हैं कि शब्द ग्रहण करके बने हँस को सद्गुरु के साथ जाता हुआ देखकर यम रोता रह जाता है। जब एक हँस दूसरे हँस से मिलता है तो परमसुख की प्राप्ति होती है। इस संसार में तो बगुलों की लाइन लगी हुई है, इसलिये हँसों की कदर नहीं है। हे हँसा! यदि तुम्हें दूध की प्यास है तो कुंए में नहीं मिलेगा। इस संसार में तो सब जगह मोह-ममता का ही जल भरा है जिसे हँस सारहीन समझकर त्याग देता है। छः-दर्शन और अन्यान्य शाखायें सब भ्रमित हैं। चार वर्ण, वेद, किताब, आदि बातों से परे सद्गुरु शरण में 'हँस' निराला होता है। काल तीन लोक का राजा है जिसने सबको यहाँ बाँध रखा है। तुम मेरी बात मान लो और 'नाम' से 'हँस' बनकर काल को जीत अपने निजलोक चलो। सार-शब्द ग्रहण कर लोगे तो मैं तुम्हें अमरलोक ले चलूँगा, जहाँ से फिर कभी संसार में लौटकर नहीं आना होगा।

हँसा हँस मिले सुख होई।

इहाँ तो पाँती है बगुलन की कदर न जाने कोई ॥

जो हँसा तोरे प्यास छीर की, कूप नीर नहिं होई ॥

यह तो नीर सकल ममता को, हँस तजा जस चोई ॥

षट दर्शन पाखण्ड छानवे, भेष धरे सब कोई ॥

चार बरन और वेद किताबे, हँस निराला होई ॥

यह जम तीन लोक को राजा, बाँधे अस्त्र सँजोई ॥

सब्द जीत चलो हँस हमारे, तब जम रहिहैं रोई ॥

कहे कबीर प्रतीत मान ले, जिव नहिं जाय बिगोई ॥

लै बैठारों अमरलोक में, आवागमन न होई ॥



## पुस्तक सूची

1. परा रहस्या
2. मासिक पत्रिका सत्यकेतु
3. पावन प्रार्थनाएँ
4. सद्गुरु चालीसा
5. वार्षिक डायरी
6. सद्गुरु भक्ति
7. कहाँ से तू आया और कहाँ तुझे जाना रे?
8. सत्संग सुधारस
9. नाम अमृत सागर
10. अमृत वाणी
11. सद्गुरु नाम जहाज़ है
12. चल हंसा सतलोक
13. कोटि नाम संसार में तिनते मुक्ति न होय
14. मूल नाम गुप्त है, जाने बिरला कोय
15. गुरु सुमिरै सो पार
16. तीन लोक से न्यारा
17. सेहत के लिए ज़रूरी
18. सहजे सहज पाइये
19. रोगों से छुटकारा
20. सद्गुरु महिमा
21. भक्ति के चोर
22. अनुरागसागर वाणी
23. भक्ति सागर
24. हरि सेवा युग चार है, गुरु सेवा पल एक
25. सत्य नाम के सुमरते उबरे पतित अनेक
26. काग पलट हंसा कर दीना
27. कस्तूरी कुण्डल बसै मृग खोजे बन माहिं
28. गुरु पारस गुरु परस है
29. गुरु अमृत की खान
30. शीश दिये जो गुरु मिले तो भी सस्ता जान
31. मूल सुरति
32. भृंग मता होय जिहि पासा, सोई गुरु सत्य धर्मदासा
33. मैं कहता हूँ आँखिन देखी
34. गुरु संजीवन नाम बतावे
35. नाम बिना नर भटक मरे
36. रोगों की पहचान
37. यह संसार काल को देशा
38. न्यारी भक्ति
39. साहिब तेरी साहिबी सब घट रही समाय
41. आयुर्वेद का कमाल रोगों के निदान में
42. सुरति समानी नाम में
43. सबकी गठरी लाल है, कोई नहीं कंगाल

44. निन्दक जीवे युगन युग  
काम हमारा होय।
45. निराले सदगुरु
46. कुँजड़ों की हाट में हीरे का  
क्या मोल
47. जीवड़ा तू तो अमर लोक का  
पड़ा काल बस आई हो
48. मुझे है काम 'सद्गुरु से  
जगत रूठे तो रूठन दे'
49. जेहि खोजत कल्पो भये  
घटहि माहिं सो मूर
50. आत्म ज्ञान बिना नर भटके
51. बिन सतगुरु बाँचे नहीं  
कोटिन करे उपाय
52. अँधी सुरति नाम बिन जानो
53. सत्यनाम निज औषधि  
सद्गुरु देई बताय
54. सेहत संजीवनी
55. भक्ति दान गुरु दीजिए
56. मन पर जो सवार है ऐसा  
ऐसा विरला कोई
57. सत्यनाम है सार बूझौ सन्त  
विवेक करि
58. रोग निवारक
59. मुक्ति भेद मैं कहौं विचारी
60. "तेरा बैरी कोई नहीं  
तेरा बैरी मन"
61. सुरति का खेल सारा है
62. सार शब्द निहअक्षर सारा
63. करूँ जगत से न्यार
64. बिन सत्संग विवेक न होई
65. सत्य नाम को जनि कर दूजा  
देई बहा
66. सुरत कमल सदगुरु स्थाना
67. अब भया रे गुरु का बच्चा
68. मनहिं निरंजन सबै नचाए
69. सत्यपुरुष को जानसी  
तिसका सतगुरु नाम
70. आपा पौ आपहि बँध्यो
71. सत्य भक्ति का भेद न्यार
72. जपो रे हंसा केवल नाम  
कबीर
73. सत्य भक्ति कोई बिरला जाना
74. जगत है रैन का सपना
75. 70 प्रलय मारग माहीं
76. सार नाम सत्यपुरुष कहाया
77. आवे न जावे मरे न जन्मे  
सोई सत्यपुरुष हमारा है
78. निराकार मन
79. सत्य सार
80. सुरति
81. भक्ति रहस्य
82. आत्म बोध
83. अमर लोक
84. सच्चा शिष्य
85. सदगुरू तत्व
86. कोई कोई जीव हमारा है
87. विहंगम मुद्रा
88. शक्ति बिना नहीं पंथ चलई
89. पुरुष शक्ति जब आए समाई  
तब नहीं रोके काल कसाई
90. सदगुरु मोहि दीनी अजब  
जड़ी
91. मेरा करता मेरा साईया
92. कबीर कलयुग आ गया,  
सन्त न पूजै कोय।।
93. पूर्णिमा महात्म
94. चार पदार्थ इक मग माहीं
95. अध्यात्मिक प्रश्नोत्तर
96. चिंता तो सतनाम की और न  
चितवे दास
97. काल खड़ा सर ऊपरे
98. कहत कबीर सुनो भाई साधो
99. सेवा सिमरन सार है
100. गुरु आज्ञा निरखत रहे, जैसे  
मणिह भुजंग
101. अकह नाम

## ਤੁਰਕੀ

01. ਸਦਗੁਰੂ ਭਕਤਿ

02. ਅਨੁਰਾਗਸਾਗਰ ਵਾਧੀ

## ਮਰਾਠੀ ਭਾਸ਼ਾ

01. ਯਹ ਸੰਸਾਰ ਕਾਲ ਕੋ ਦੇਸ਼ਾ

02. ਅਨੁਰਾਗਸਾਗਰ ਵਾਧੀ

03. ਨਾਮਾ ਸ਼ਿਵਾਯ ਮਾਨਵ ਜੀਵਨ  
ਵਧਰਥ

04. ਕਰੁ ਜਗਤ ਸੇ ਨ੍ਯਾਰ

## ਤਮਿਲ ਭਾਸ਼ਾ

01. ਯਹ ਸੰਸਾਰ ਕਾਲ ਕੋ ਦੇਸ਼ਾ

02. ਅਨੁਰਾਗਸਾਗਰ ਵਾਧੀ

## ਕਨਨਡ ਭਾਸ਼ਾ

01. ਮਨ ਪਰ ਓ ਅਸਵਾਰ ਹੈ ਏਸਾ  
ਵਿਰਲਾ ਕੋਝਿ

02. ਕਰੁ ਜਗਤ ਸੇ ਨ੍ਯਾਰ

03. ਅਨੁਰਾਗਸਾਗਰ ਵਾਧੀ

## ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ

01. ਸਤਿਗੁਰੂ ਭਗਤੀ

02. ਨਾਮ ਅਮ੍ਰਿਤ ਸਾਗਰ

03. ਕਰੁ ਜਗਤ ਸੇ ਨਿਆਰ

04. ਅਨੁਰਾਗ ਸਾਗਰ ਬਾਣੀ

## ਗੁਜਰਾਤੀ ਭਾਸ਼ਾ

01. ਅਨੁਰਾਗਸਾਗਰ ਵਾਧੀ

02. ਨਾਮ ਬਿਨਾ ਨਰ ਭਟਕ ਮੈਰੈ

03. ਕਰੁ ਜਗਤ ਸੇ ਨ੍ਯਾਰ

## ਡੋਗਰੀ ਭਾਸ਼ਾ

01. ਨ੍ਯਾਰੀ ਭਕਤਿ

02. ਸਹਜੇ ਸਹਜ ਪਾਝਏ

## ਅੰਗ੍ਰੇਜੀ ਭਾਸ਼ਾ

01. Meditation on a Real  
SATGURU Ensures  
Permanent Salvation

02. Satguru Bhakti  
(Uniqueness)

03. The Truth

04. Without Soul  
Realisation Man Has  
to Wander

05. The Whole Game is  
That Of  
Concentration

06. Atma-An Exposition  
(Atam Bhodh)

07. 70 Dissolution

08. Anuragsagar vani

09. Naam World of This  
World

10. Secret of Salvation

11. Crossing the Ocean  
of Life

12. Stealer of Devotion